शीलवान सुदर्शन

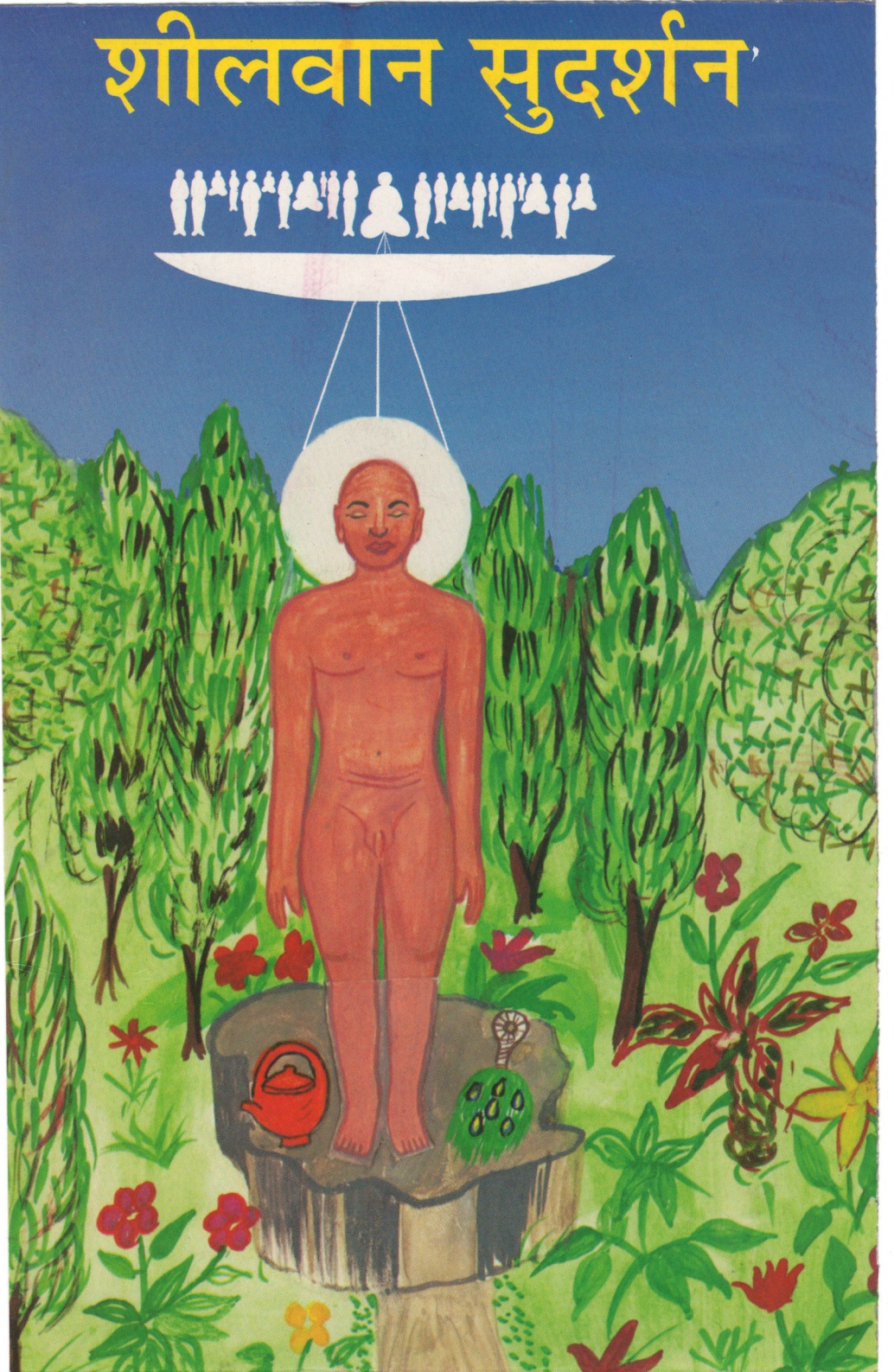

शीलवान सुदर्शन

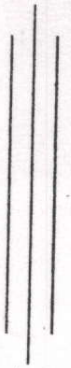

लेखिका :

ब्र. विमलाबेन, जबलपुर

प्रकाशक :

श्री जिनसेनाचार्य प्रकाशन संस्थान

विमल कुटीर, दीक्षितपुरा, लार्डगंज

जबलपुर (म.प्र.)

शीलवान सुदर्शन	:	ब्र. बिमला बेन
प्रथम चार संस्करण	:	12 हजार
(15 अगस्त 1996 से अद्यतन्)		
पंचम संस्करण	:	1 हजार
(26 जनवरी, 2015 ई.)		
योग	:	**13 हजार**

मूल्य : **10 रुपये**

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

1.	श्रीमती शारदा जयकुमार जैन	500.00
2.	प्रियंकी जैन, जयपुर	500.00
3.	एक मुमुक्षु भाई	500.00
4.	श्रीमती रश्मिदेवी वीरेशजी कासलीवाल, सूरत	150.00
5.	श्री डी.सी. दिवाकर, सागर	101.00
	कुल राशि	**1751.00**

मुद्रक :
सन् एन सन प्रेस
तिलक नगर, जयपुर

प्रकाशकीय

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी का जब से मुझे सान्निध्य प्राप्त हुआ एवं उनके मुखारविंद से जिनवाणी का मर्म सुना तो मेरे मन में एक भावना जागृत हुई कि जिनवाणी माता की सेवा हमें भी करनी चाहिए। तभी से इस भावना का प्रवाह अविरल रूप से चलता रहा; मगर कुछ साकार रूप नजर नहीं आया। बहुत काल की भावना ने एक राह दी कि मेरे घर में ही इस कार्य को साकार रूप देने की सामर्थ्य रखनेवाले व्यक्ति हैं। अत: मेरी जो बड़ी बहिन बाल ब्र. विमलाबेन, जिन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री का सतत् २० वर्ष का सान्निध्य प्राप्त किया है; उनसे ही अपनी भावना व्यक्त की तो उन्होंने तत्काल ही मेरी भावना का सहर्ष स्वागत किया।

हमारे आठों भाई-बहनों के विचार से धर्मभावना के लिये अध्यात्म, वैराग्य एवं भक्तिरस गर्भित जैन कथा साहित्य प्रकाशित करने का निर्णय हुआ। इस निर्णय के अनुसार ही हमने **"श्री जिनसेनाचार्य प्रकाशन संस्थान"** नामक संस्था का नामकरण किया।

अब इस संस्था से 'शीलवान सुदर्शन' जैन कथा प्रकाशित करते समय हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। भविष्य में भी इसतरह का सत्साहित्य प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहे; ऐसी भावना भाते हैं एवं ऐसे महान् सत्पुरुषों के समान ही हमारा जीवन पवित्र बने, यही भावना है।

समाज सत्साहित्य के स्वाध्याय से लाभान्वित होकर अपना जीवन पवित्र बनावे; इसमें ही हमारे कार्य की सफलता है।

अध्यक्षा:
श्रीमती राजकुमारी धर्मचन्दजी दिवाकर
श्री जिनसेनाचार्य प्रकाशन संस्थान, जबलपुर

अपनी बात

यह परम पूज्य १०८ श्री सुदर्शन स्वामी का वैराग्य उत्पादक पावनकारी चरित्र है। इसमें वीतरागी साधक संतों की सागरसम गंभीरता एवं धीरता का दिग्दर्शन कराया गया है। इस ग्रन्थ को पढ़ने की मुझे भावना बहुत वर्षों से थी। परन्तु वर्तमान में यह अनुपलब्ध है और कहीं हिन्दी में नहीं मिलती, संस्कृत में मिलती है। मैंने कई जगह इस चरित्र की खोज की तब एक प्रति मिली, परन्तु उसमें भी मुनिदशा में वस्त्र का उल्लेख मिला तो मुझे अन्यत्र उसकी खोज की जिज्ञासा बनी रही। इस हेतु मैंने इटावा में पूछा तो एक बहन ने अपने घर से लाकर दिया। वह आदि से अंत तक पूर्ण रूप से दिगम्बर परम्परा का ही है। जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्ता से दुलीचन्द परिवार से प्रकाशित है। दूसरा 'महामुनि सुदर्शन' प्रकाशक श्री कमलदहजी सिद्धक्षेत्र है, दोनों देखे परन्तु यह बहुत लघुकाय अर्थात् ३८ पृष्ठ का है। इसलिये मेरा मन इसे विस्तार से लिखने को हो गया। यही इसे लिखने का उद्देश्य रहा है। इन्हीं दो ग्रन्थों के आधार से यह वैराग्य रस, भक्तिरस एवं सिद्धान्तगर्भित विस्तृत चरित्र लिखा गया है। कितने ही ग्रन्थों में देखा परन्तु इनकी जन्म तिथि के अलावा दीक्षा तिथि, केवलज्ञान तिथि और मोक्षतिथि का कहीं कुछ भी उल्लेख नहीं मिला। पटनानगर वालों से भी पूछा तो उन्हें भी कुछ जानकारी नहीं थी । पूज्य सुदर्शन स्वामी मुनिराज की पूजा में भी देखा; परन्तु कहीं कुछ नहीं मिला, तो अब मेरे पास कोई उपाय नहीं रहा, इसलिए मैंने भी पूर्ववत् ही लिख दिया। यद्यपि पूर्वग्रन्थकारों के सामने मैं तो क्या ताकत रखती हूँ? फिर भी सूर्य को दीपक दिखाने जैसी वाचालता मैंने की है। इसमें कुछ त्रुटियाँ हों तो पाठकगण मुझे अवगत कराने की कृपा करें और मुझे अज्ञानी समझकर क्षमा करें।

ब्र. विमलाबेन, जबलपुर

शीलवान सुदर्शन

मंगलाचरण

दोहा

अन्तःकृत केवलि प्रभो, हुए सुदर्शन वीर।
ब्रह्मचर्य में मेरू सम, धन्य धन्य वे धीर॥
दृढ़ता लख व्रत की बनी, शूली सिंहासन।
ब्रह्मस्वरूप निजात्म ही, मंगलमय आसन॥
चिदानन्द चैतन्यमय चौबीसों जिनराज।
करूँ वन्दना भाव से आतम हित के काज॥

भव्य जीवों को शुद्धब्रह्म में लीनता रूप अखण्ड ब्रह्मचर्य की प्रेरणा देने वाले श्री सुदर्शन स्वामी का पावन चरित्र लिखने के संकल्प पूर्वक मैं मोक्षमार्ग के नेता, त्रिभुवन तिलक वृषभादि चतुर्विंशति तीर्थंकरों एवं गणधरादि मुनि भगवन्तों को मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

श्री सुदर्शन स्वामी वर्तमान शासन नायक श्री महावीर स्वामी की परम्परा में पंचम अन्तःकृत केवली हुए हैं। वे कामदेव समान सुन्दररूप के धनी एवं घोर उपसर्गों के विजेता थे। अपने एवं पाठकों के परिणामों की विशुद्धि के प्रयोजन से उनके चरित्र ग्रन्थ की रचना की जा रही है। मुझे आशा है कि इस ग्रन्थ के पठन पाठन से भव्य जीवों को शुद्धात्म तत्व की अचिंत्य महिमा का बोध होगा तथा ब्रह्मचर्य आदि व्रतों को निरतिचार पालने की प्रेरणा मिलेगी।

जम्बूद्वीप वर्णन

इस मध्यलोक में स्थित असंख्यात द्वीप और समुद्रों में सबसे मध्य में जम्बूद्वीप स्थित है। जाम्बूवृक्षों की बहुलता के कारण यह अपने नाम को सार्थक कर रहा है। एक लाख योजन विस्तार वाले इस द्वीप के मध्य में एक लाख ४० योजन की ऊँचाई वाला सुमेरू पर्वत नाभि के समान सुशोभित है। इसकी एक हजार योजन गहरी स्वर्णमयी नींव है तथा निन्यावें हजार योजन की ऊंचाई और ४० योजन की चूलिका है। इस पर्वत पर अनेक वनों और उपवनों के रूप में प्राकृतिक सौन्दर्य बिखर रहा है। यह पर्वत अनेक भव्य अकृत्रिम जिनालयों से

गौरवान्वित है। अति उन्नत शिखरों और ध्वजाओं से सुशोभित वे जिनालय मानों भव्य जीवों को वीतराग भाव की आराधना करने के लिये आमंत्रित कर रहे हैं।

यह सुमेरू पर्वत साधक सन्तों का शाश्वत साधना केन्द्र है। अनादि से अब तक अनन्त बाल तीर्थंकरों को अपने शीष पर विराजमान करके उनसे स्पर्शित जल से स्नान करते रहने के कारण जो अत्यन्त पवित्र है।

इस जम्बूद्वीप के दक्षिण में गंगा-सिंधु जैसी महानदियों से सुशोभित भरतक्षेत्र है। इसके छह खण्डों में एक आर्यखण्ड है जिसमें धार्मिक वृत्ति एवं प्रवृत्ति वाले अनेक आर्यजन बास करते हैं। इस आर्यखण्ड के अनेक जीव रत्नत्रय धर्म की आराधना करके शाश्वत सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं।

इस आर्यखण्ड में अनेक ग्रामों, नगरों तथा वनों-उपवनों से सुशोभित एक अंग देश है। इसमें अनेक गगनचुम्बी भव्य जिनालय भव्य जीवों को जिनेन्द्र दर्शन की प्रेरणा दे रहे हैं। इन जिनालयों में मणि-रत्नों से निर्मित वीतराग भाववाही विशाल जिनबिम्ब विराजमान हैं, मानो समवशरण में साक्षात् जिनेन्द्र भगवान ही सुशोभित हों। उन जिनबिम्बों का पावन दर्शन एवं मूक उपदेश भव्य जीवों को मुक्ति का मार्ग दिखा रहा है। उस अंगदेश में निरन्तर अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर अनुभव करने वाले मुनिवरों से शोभित श्रमण संघ धर्मामृत की वर्षा द्वारा मोह राग द्वेष से दुखी जीवों का भवताप हरण करते हैं।

उस अंगदेश में अनेक पुष्प वाटिकायें बहुविध रंग बिरंगें पुष्पों से अपनी अद्‌भुत शोभा बिखेर रहीं हैं। उस सौन्दर्य में मन को खींचने वाली चुम्बकवत् आकर्षण शक्ति है। उन पुष्पों की सुगन्ध के लोभी भ्रमर उनका पराग चूसकर मोही जीवों के समान मत्त हो रहे हैं। वहाँ नगरों के मार्गों के दोनों ओर स्थित वृक्ष समूह ऐसा जान पड़ता है मानो पथिक जनों के स्वागत में पुष्पहार लिये खड़ा हो। जिस प्रकार निकट भव्य जीव जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करके अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हैं, उसी प्रकार उन वृक्षों की छाया में पथिक जन यात्रा की क्लान्ति से मुक्त होकर चित्त में शांति का अनुभव करते हैं। वे वृक्ष अपने उपयोग को ज्ञायक स्वभाव में जोड़ने वाले योगियों की याद दिलाते हैं। जैसे पात्र जीव उन योगियों के दर्शन से रत्नत्रय फल प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार पथिक जन उन विशाल वृक्षों के फल पाकर अपनी क्षुधा शान्त करते हैं।

जैसे वीतरागता के आराधक मुनिवृन्दों का निर्मल मन सदा शांति देता है। वैसे ही निर्मल जल से पूर्ण वहाँ के नदी, सरोवर, कूप, बावड़ियाँ एवं झीलें जगतजनों

की तृषा शांत करते रहते हैं। जैसे मुनिराजों का वीतरागी आचरण पापक्षय के लिये बैताड़ यन्त्र के समान है। वैसे ही वह निर्मल नीर शारीरिक मल क्षयकरणशील है। मुनिराजों के परम वीतरागी मन के सामने विषय कषाय फटक भी नहीं पाते। वैसे ही वहाँ के प्राणी अतिमंदकषायी होने से तीव्र कषाय तो मानो उनसे डरकर कहीं भाग ही गई हो। कितनी ही भव्य आत्मायें अपनी भव्यता को उदित कर अपने स्वदेश (मोक्षधाम) को प्राप्त करते हैं, कितने ही वीतरागता के साथ पुण्य का भंडार ऐसे तीर्थंकर पद को प्राप्त करते हैं, कितने ही निर्मल रत्नत्रय से जीवन को मंडित करते हैं, कितने ही देशव्रत एवं सम्यक्त्वरत्न को प्राप्त करते हैं और कितने ही पुण्य उपार्जन करके स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं अर्थात् वहाँ के प्राणी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों ही पुरुषार्थों में कुशल हैं। अधिक क्या कहें ? वह अंगदेश इस प्रकार धन-धान्य, धर्म-कर्म, गुण-गौरव आदि सभी बातों से सम्पन्न है।

सुदर्शनजी के अंगदेश की राजधानी चम्पानगरी है, वह सौन्दर्य, गगनचुम्बी प्रासाद, दरवाजें, बावड़ियों, खाईयों और बड़े बड़े शूरवीरों से शोभायमान है। वहाँ के व्यक्तियों में सरलता होने से शत्रुता की पहुँच ही नहीं। जो वीतरागता के शिखर के समान जिनालयों से शोभ रही है। उन जिनालयों में साक्षात् भगवान के समान जिनबिम्ब, छत्र, चंवर एवं भामंडल से युक्त देदीप्यमान हैं, तथा उनके शिखरों पर अनेक प्रकार की शोभायुक्त ध्वजायें लहरा रहीं हैं, वहाँ के स्वर्णमयी कलश चन्द्र चमक को भी लज्जित कर रहे हैं। वहाँ के वाद्यों से मन को मोहने वाली मधुर ध्वनियाँ निकलती हैं, जिससे भव्यजन नित्य ही उत्सव का आनन्द प्राप्त करते हैं।

वहाँ के धर्म बुद्धिमय जन प्रातः उठते ही पंचपरमेष्ठी के वाचक ऐसे णमोकार मंत्र का जाप एवं सूत्रपाठ, स्वाध्याय आदि करते हैं। तदनन्तर नितप्रति क्रियाओं से निवृत होकर जिनमंदिर में जाकर श्रीमज्जिनेन्द्र देव का भक्तिभावपूर्वक दर्शन, प्रक्षाल एवं पूजन आदि करते हैं। पूज्य मुनिवर वृन्दों के मुखारबिन्दों से परम आनन्ददायनि, भवदुखहरणी जिनवाणी श्रवण कर अपना मन पवित्र करते हैं तत्पश्चात् अपने-अपने घर को आकर आहारचर्या के समय द्वाराप्रेक्षण कर मुनिवरों के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं और पात्रलाभ पाकर आहारदान दे अपने जीवन को सफल बनाते हैं, उसके बाद मुनीश्वर को वन तक भेज आने के बाद भोजन आदि क्रिया कर न्याय-नीतिपूर्वक अपनी आजीविका के साधन प्राप्त करते हैं। सूर्य अस्त होने के पूर्व ही अपनी दैनिक क्रियाओं से निवृत होकर संध्या काल में पुनः पंचपरमेष्ठी का स्तवन, चिंतवन एवं ध्यान से आत्माराधनापूर्वक आचार्य, उपाध्याय

एवं साधु महाराज की सेवा में उनका मन सदा भक्तिवंत रहता है, इस प्रकार सभी क्रियाओं में वे प्रमाद एवं उपेक्षाबुद्धि रहित हो वर्तते हैं। वहाँ बड़े-बड़े धर्मात्मा, ज्ञानवान, दानवीर, ऐश्वर्यवान, रूपवान, नित्यानंदभोजी, समदर्शी, व्रती और शीलनिष्ठ प्राणी रहते हैं। वे रूपसंपदा, धनसंपदा, एवं धैर्यसंपदा से मानो सुरसमूह ही राज रहा हो ऐसे प्रतीत होते हैं।

चम्पानगरी स्वभाव से परमपूज्य श्री वासुपूज्य भगवान के कल्याणकों से पवित्र तो थी ही, परन्तु अब मोक्षगामी श्रेष्ठी वृषभदास एवं सुदर्शन जैसे पवित्रात्माओं के सहवास से उसकी (चम्पानगरी की) पवित्रता में चार चांद लग गये अर्थात् वे व्रत, शील, एवं रत्नत्रय से युक्त चम्पानगरी के अवर्णनीय अलंकार हैं। वे वीतरागी देव, शास्त्र, गुरुओं के प्रति अत्यन्त भक्तिवंत एवं सदाचारी हैं, उनके सद्गुणों के कारण चम्पानगरी भी गुणसम्पन्न कहलाती है। चम्पानगरी की प्रजा का भाग्य रूपी भानु अति ही चमक उठा, यथानाम तथा गुणधारी का समागम मिल गया। नगरी के अधिपति का नाम धात्रीवाहन है, वे भी बड़े धर्मनिष्ठ, दानशील, पराक्रमी और शीलसम्पन्न हैं, तथा राजनीति विशारद और प्रजा के परम प्रेमी भी हैं। चक्रवर्ती समान तेजवंत हैं। उनकी सुन्दर अभयमती नाम की रानी है जो पटरानी पदवी की धारी है तथा श्रेष्ठी वृषभदासजी की भी सर्वगुणसम्पन्न और रूप सौन्दर्य में देवांगनाओं को भी लज्जित कर देने वाली जिनमती नाम की धर्मपत्नी है, जो कि धर्म रत्नों से सुशोभित है। दोनों का जीवन धर्माचरण से महक रहा है। ज्ञानी तो सदा ज्ञानानंदमय जीवन ही जीते हैं।

एक दिन जिनमतिजी आतम भावना भातीं हुईं अपने शयनगृह में सोई हुईं थीं कि रात्रि के अन्तिम पहर में एक सुन्दर एवं मंगलकल्पवृक्ष, सुरप्रसाद, असीमसमुद्र और वर्धमान प्रखर अग्निरूप स्वप्न देखे। उसे देखते ही जिनमति का हृदय हर्षित हो उठा, उनकी निद्रा खुल गई, वे विचारतीं हैं कि ऐसे मंगल स्वप्न तो मैंने कभी नहीं देखे, क्या कोई महापुरुष मेरे गर्भ में आने वाला है या कोई महाऋद्धिधारी संतों का आगमन होने वाला है? आखिर है क्या ? इस विचार के बाद प्रथम तो जिनमतिजी ने सामायिक एवं स्वाध्याय आदि नित्य नैमित्तिक कार्य किये, दैनिक क्रियाओं से निवृत होने के पश्चात् अपने पति श्रेष्ठी श्री वृषभदासजी के पास गईं, उन्हें नम्रतापूर्वक प्रणाम करके बोलीं हे पतिदेव ! आज रात्रि के पिछले पहर में मैंने सुन्दर कल्पवृक्ष, सुरप्रासद, असीम-समुद्र और वर्धमान प्रखर अग्नि रूप मंगल स्वप्न देखे हैं, उनका फल ज्ञात करने की मेरी उग्र भावना है।

श्रेष्ठी वृषभदासजी का मन मयूर भी मंगल स्वप्न सुनकर आनन्दित हो उठा, हर्षित चित्त श्रेष्ठी बोले- हे प्रिये ! अपने महाभाग्य से अपने ही नगर के उद्यान में कल ही पूज्य संतों का आगमन हुआ है, वे बहुत ही ज्ञानी हैं उनके ही मुखारबिन्द से स्वप्नों का फल सुनेगें, वे ही इसके ज्ञाता हैं। इतना कहकर दोनों जन जिनमंदिर को गये, वहाँ जिनेन्द्र देव के दर्शन करने के पश्चात् दोनों ही जन मुनिराज के निकट उद्यान में पहुँचे। आत्मिक अतीन्द्रिय आनन्द में केली करने वाले, साक्षात् मोक्षमार्ग के प्रणेता, तीनज्ञान से सुशोभित परमपूज्य श्री सुगुप्तीसागर मुनिराज के दर्शन वंदन करने के बाद मंगलफल के अभिलाषी सेठ वृषभदास नतमस्तक हो गुरुराज के चरण कमलों के समीप ही बैठ गये, सेठानी जिनमतिजी भी अपने योग्य स्थान में बैठ गईं। गुरु स्तुति करने के बाद सेठजी ने हाथ जोड़कर गुरुवर से स्वप्नों का फल पूछा।

हिताहित के ज्ञाता मुनिवर ने अपने अवधिज्ञान से स्वप्नों का फल ज्ञात करके कहा-हे श्रेष्ठी ! सर्व प्रथम कल्पवृक्ष देखने से तुम्हारे एक जगत प्रतापी पुत्र होगा, वह महान साहसी एवं कामदेव समान सुन्दर रूपवान होगा, वह अपने गुणों से जगत में प्रतिष्ठावान, ऐश्वर्यवान, शीलवान, दानवीर इत्यादि होगा। और सबकी आशाओं की तृप्तिकर्ता होगा।

सुरप्रासाद देखने से तुम्हारा पुत्र मनुष्यों एवं देवों द्वारा पूज्यनीय होगा और असीमसमुद्र देखने से वह लोक की सीमा को उलांघकर अनन्तगुण गंभीर होगा तथा प्रखर अग्नि देखने से वह समस्त कर्मों का क्षय करके मुक्तिपुरी का अधिकारी होगा अर्थात् आपका पुत्र पंचम अंतःकृत केवली होगा। हे श्रेष्ठी!ये मंगल स्वप्न आपके भावी जीवन के सुन्दर गुणों के सूचक हैं। गुरुवर के मुख से स्वप्न फल सुनकर दोनों जन अति हर्षित हुए। पश्चात् गुरुवर की वंदना करके वे पुलकित हृदय सहित अपने भवन को लौट आये। और गृहस्थोचित धर्म-कर्म करते हुए सुख पूर्वक रहने लगे।

इन शुभ स्वप्नों के फल स्वरूप माता जिनमति ने कुछ ही दिन बाद गर्भ धारण किया। जिसके समाचार पाकर सभी बन्धुवर्ग एवं परिवार के जनों के हृदय में आनन्द की लहर उछल पड़ी। उस महान पुरुष के गर्भ में आने से जिनमति के ऊपर कुटुम्बीजनों का स्नेहसागर भी उमड़ पड़ा। ज्यों ज्यों गर्भस्थ बालक वृद्धि को प्राप्त होता जाता था त्यों त्यों माता पिता एवं परिवार जनों की भावनायें उस होनहार बालक को देखने को अति लालायित होती जातीं थीं। रत्न के सम्पर्क से जिनमति

भी रत्नाकर समान शोभने लगी। जिनमति को जिनालयों का निर्माण कराना, अति उत्साह पूर्वक जिनेन्द्र पूजन कराना, पवित्र तीर्थों की पावनकारी यात्रा करना, याचकों को दान देना इस प्रकार के शुंभ दोहले उनके मन में उठा करते हैं। पुण्य योग से सेठ वृषभदासजी ने सेठानीजी की सभी भावनायें पूर्ण कीं। इस प्रकार धर्माचरणपूर्वक नौ मास कहाँ व्यतीत हो गये, कुछ खबर ही नहीं पड़ी और शुभ मुहूर्त में पौष शुक्ला चतुर्थी को जिनमतिजी ने सुन्दर रूपवान एवं गुणवान पुत्ररत्न को जन्म दिया। जिसका सौन्दर्य देखकर अंखिया तृप्त होकर भी अतृप्त हैं।

महा तेजवन्त बालक के तेज के सामने सूर्य भी तेजहीन दिखता था, उसकी कांति के सामने चन्द्रमा की कांति भी शर्मा जाती थी। उस समय उसके सौन्दर्य के लिये कोई उपमा योग्य व्यक्ति ही नहीं था। श्रेष्ठी वृषभदास ने उसी समय अपने कुटुम्बीजनों के साथ जिनमंदिर में जाकर जिनेन्द्र देव की भाव भक्तिपूर्ण स्तुति की और सभी नगरजनों द्वारा महान पूजन विधान कराया, ध्वजाओं, तोरणों एवं किंकणियों द्वारा जिनालयों की शोभा कराई। उसके बाद दुखिया, असहाय एवं अनाथों को किंइच्छित दान दिया, अपने भवन को दीपोत्सव द्वारा जगमगा दिया, नानाप्रकार के वादिंत्रों की मधुर ध्वनियों से सम्पूर्ण नगर गूंजायमान हो उठा। इस प्रकार अत्यंत उल्लासपूर्वक पुत्र जन्मोत्सव मनाया गया।

कुछ दिनों के बाद बन्धुवर्गों ने बालक का नामकरण संस्कार कराया, वह रूप लावण्य का निलय, दर्शकों को सुखदाता और गुणों का निधान होने से उसका नाम सुदर्शनकुमार ऐसा सार्थक नाम रखा गया। वह बालक द्वितीया के चन्द्र के समान दिन प्रतिदिन वृद्धिगत होने लगा। श्रेष्ठी वृषभदासजी द्वारा बालक के पालन पोषण एवं खिलाने आदि के लिये धात मातायें नियुक्त कर दीं गईं। कोई बालक को खिलाती, कोई उसको नहलाती, तो कोई उसे योग्य वस्त्र आभूषण पहनातीं, कोई उसे यथा योग्य समयपर दुग्धपान कराती। इस प्रकार होनहार बालक का उचित व्यवस्था पूर्ण लालन-पालन होने लगा। बालक की मधुर मुस्कान एवं मीठी वाणी तथा निर्विकार बाल्यलीला से सम्पूर्ण परिवार प्रमुदित होने लगा। जब बालक ठुमक ठुमक कर चलता तब उसके छोटे छोटे हाथ पैर रत्नमयी आभूषणों से सुशोभित अति ही प्यारे प्यारे दिख रहे थे जिन्हें देख माता-पिता का आनन्द अन्दर फूला नहीं समाता। उसकी सभी बाल्य चेष्टायें सभी के मनमोहक हैं। जो भी देखता वह उसे देखते ही रहना चाहता है, किसी का भी मन उसे देख देखकर अघाता नहीं है। बालकगण उसके साथ अति आनन्दपूर्वक खेला करते हैं। बालक सुदर्शन चम्पापुर

वासियों के प्रेम का एक मात्र अधिकारी है अभी तो सुदर्शनकुमार किशोर ही था कि उसी समय एक और सोने में सुगंध का मनोहर प्रसंग बना। वह क्या है ?

श्रेष्ठी वृषभदास के ही अनन्य मित्र श्री सागरदत्त भी उसी चम्पानगरी में बास करते हैं। वे भी बड़े धीमान एवं ऐश्वर्यवान हैं और समान रुचिवानों में सहज ही मित्रता या भाईचारा हो जाना स्वाभाविक ही है। श्री सागरदत्तजी की सरल स्वभावी रूपवान एवं गुणवान एक सागरसेना नाम की धर्मपत्नी है। वृषभदास एवं सागरदत्त दोनों पक्के मित्र होने से सागरदत्त ने अपनी संतान होने के पूर्व ही वृषभदास को यह बात कह दी थी कि यदि मेरी पुत्री होगी तो मैं आपके पुत्र सुदर्शन को ही दूँगा, इस संबंध से हम सभी का भावी जीवन भी आनन्द से निकलेगा।

"प्रबल इच्छा बांझ नहीं होती" इस कहावत के अनुकूल श्रेष्ठी सागरदत्त के यहाँ सर्व गुण सम्पन्न सौन्दर्य में देवांगनाओं को भी शर्मा देने वाली एक कन्या ने जन्म लिया। उसका मनमोहक रूप देखकर माता-पिता एवं परिवारजनों ने उसका नाम "मनोरमा" रखा, वह बालिका भी अपनी बाल्यलीला से सभी को आनन्द देती हुई दिन प्रतिदिन वृद्धिगत होने लगी।

यहाँ सुदर्शनकुमार भी बाल्य अवस्था को लांधकर कुमारावस्था की ओर बढ़ने लगे। सेठ वृषभदास ने भी कुमार को विद्या अध्ययन करने की योग्य व्यवस्था कर दी। प्रथम तो कुमार को जिनमंदिर ले जाकर प्रभु का दर्शन- पूजन कराया, उसके बाद कुमार के कल्याणार्थ उसी दिन गुरु के पास अध्ययन के लिए भेज दिया। इसी भव में पूर्णज्ञान को उदित करने वाला कुमार स्वभाव से असाधारण प्रज्ञा का धनी तो है ही, उसने अल्पावधि में ही ज्ञान का कोष भर लिया अर्थात् वह शीघ्र ही सर्व शास्त्रों में पारंगत हो गया। राजा का पुरोहित पुत्र कपिल भी प्रखर बुद्धिवंत एवं सरल स्वभावी था, उससे सुदर्शनकुमार की मित्रता हो गई। सुदर्शन एवं कपिल ऐसे घनिष्ठ मित्र हो गये कि एक दूसरे के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते थे। वे विद्या अध्ययन में, खेलने-कूदने में एवं धर्माचरण आदि सभी कार्यों में साथ ही रहते। अब सुदर्शनकुमार ने युवावस्था में प्रवेश किया, रत्नों के आभूषण एवं मणियों जड़ित हार आदि अलंकारों से कुमार की शोभा में मानो चार चांद ही लग गये हों। चन्द्र समान मुख पर चमकता हुआ कान्तिमान ललाट अत्यन्त शोभा धारण किये हुए है। वक्षस्थल पर तो मणियों का हार तारामंडल की शोभा को बिखेर रहा है। कमर में रत्नों की करधनी तोरण के समान चमक रही है एवं अंगूलियों में अंगूठियाँ कोहनूर की चमक को भी फीका कर रहीं हैं, चरण तो

रक्तकमल की शोभा को धारण किये हुए हैं, नखों में चन्द्रमा का लावण्य है, अधिक कहाँ तक कहा जाय, वह सर्व सुन्दरता का एक मात्र अधिष्ठान है। कुमार कभी तो जिनेन्द्र देव की पावनकारी पूजन करते, कभी स्वाध्याय करते, कभी वन जंगल में मुनिवृन्दों से धर्मामृत का पान करते, कभी वन में ध्यान करने बैठ जाते तो कभी मित्रमंडली से धार्मिक चर्चा-वार्ता करते, कभी वृक्षों की मनमोहक हरियाली को निहारते तो कभी रंग बिरंगे पुष्पों को देख देखकर प्रमुदित होते, तो कभी नदी-सरोवरों के तटों पर मित्रगणों के साथ जलक्रीड़ा करते, इस प्रकार युवावस्था में वे सुरकुमार समान शोभते। पुण्ययोग से ही कुमार में कामदेव सा रूप और सागर समान गुण हैं। वास्तव में धर्मात्माओं के पास ही सर्वगुण आकर वास करते हैं और धर्मात्मा ही गुणमय होते हैं, यही कारण है कि धार्मिक प्राणि धर्म की ही शरण ग्रहण करते हैं। धर्म ही कल्पवृक्ष है, धर्म ही चिन्तामणी रत्न है, धर्म ही सर्वसुखकर है और धर्म ही भवबीज नाशक है। ऐसे धर्म को सदा नमन हो।

उधर मनोरमा ने भी बाल्यावस्था में ही विद्यार्जन के साथ-साथ ज्ञानार्जन भी प्राप्त कर लिया, वह भी अपनी सहेलियों के साथ अनेक प्रकार के धर्मानुष्ठानों के साथ ही साथ वनक्रीड़ा, जलक्रीड़ा आदि करती हुई पुण्य का फल भोगती हुई अब युवावस्था में प्रवेश कर चुकी है और रूप लावण्य तो मानो मनोरमा पर पूर्ण समर्पित ही हो गये हों।

युवावस्थामय सुदर्शन

एक दिन सुदर्शन अपने इष्ट मित्रों के साथ हर्षोल्लासपूर्वक नगर में घूमने को निकले। मित्रगण उससे खूब हर्षित हो होकर हास्यप्रद बातें कर रहे हैं जिससे सुदर्शन भी उनकी हंसी में हंस हंस कर उनके आनन्द को बढ़ाता जाता है। सुदर्शन कुमार नगरजनों की आँखों के तारे तो थे ही, उसमें भी प्रमुदित मुख को देखकर सभी पुलकित हो रहे थे कि उसी समय सम्पूर्ण श्रृंगार से सुशोभित तथा मंद मंद मुस्कान के साथ बातें करती हुई मनोरमा भी अपनी सहेलियों के साथ जिनमंदिर की ओर जा रही थी। तभी अचानक सुर्दशनकुमार की नजर मनोरमा पर पड़ी, बस अब क्या था। सुदर्शन के मन में मनोरमा बस गई, वह तो उसके रूप का ही भ्रमर बन गया, सारे ही हास्य के वातावरण ने अपना रूप बदल कर चिन्ता का रूप धारण कर लिया, मानो उसकी छुपी हुई शक्ति को किसी ने अपनी ओर आकर्षित करके अपने अन्दर कैद कर ली हो। कुमार वहीं से पीछे मुड़कर अपने भवन की ओर चल दिये। उसके अन्दर बेचेनी ने अपना जाल बिछा लिया, वह अपने भवन

में जाकर शय्या पर लेट गया। मित्र की परिवर्तित स्थिति को मित्रगण अच्छी तरह जान चुके थे। अचानक कुमार को चिन्तितदशा में देखकर माता-पिता विचार में पड़ गये अरे ! ऐसा क्या हुआ होगा ? माता-पिता ने प्रेमपूर्वक सुदर्शनकुमार से पूछा बेटा ! इतनी अधिक चिन्ता का क्या कारण है ? मुझे शीघ्र ही बतलाओ।

सुदर्शन ने लज्जावश कोई उत्तर नहीं दिया, तब उसके मित्र कपिल से पूछा, हे तनुज प्राणवल्लभ ! तुम्हारे मित्र की ऐसी दशा होने का क्या कारण है ?

कपिल बोला, हे तात ! हम सभी मित्रगण आमोद-प्रमोद के साथ नगर में घूमने जा रहे थे कि उसी समय सेठ सागरदत्त की कन्या मनोरमा जिनमंदिर की ओर जा रही थी, उस पर सुदर्शन की नजर जा पड़ी, बस उसी समय से सुदर्शन का रंग बदल गया और वहीं से वापस घर की ओर चला आया। कपिल के मुख से कुमार की दशा का वृतान्त सुनकर वृषभदास का मन बड़ा हर्षित हुआ। एक तो अपने मित्र की कन्या, उस पर भी उसके जन्म से पहले ही वचनबद्ध थे। अतः जैसा वृषभदास चाहते थे वैसा ही योगानुयोग बन गया। जैसे ही श्रेष्ठी अपने पुत्र के सुखार्थ सागरदत्त के घर जाने को तैयार हुए कि –

जैसी दशा यहाँ सुदर्शन की हो रही है वैसी ही दशा सुदर्शन को देखते ही वहाँ मनोरमा की भी हो रही है। सागरदत्त को भी मनोरमा की सहेलियों द्वारा सब वृतान्त ज्ञात हुआ अतः सागरदत्त भी हर्षित हो अपनी पूर्व बात की याद दिलाने अपने मित्र वृषभदास के यहाँ आ पहुँचे। वृषभदास ने अपने मित्र का योग्य सत्कार करके सुन्दर आसन पर बैठाने के उपरान्त उनसे आने का कारण पूछा, हे मित्र ! आज आप बहुत खुशदिल से नजर आ रहे हो, ऐसी क्या बात है ?

श्रेष्ठी सागरदत्त मंद मंद मुस्काते हुए बोले, हे मित्र ! अपने बीच एक बार ऐसी बात हुई थी कि आपका धर्मात्मा पुत्र सुदर्शन मेरी कन्या का सौभाग्य कान्त बनेगा तो कितना अच्छा होगा। अब वह शुभ घड़ी निकट आ चुकी है, इस हेतु मैं आपके समक्ष प्रस्तुत हुआ हूँ।

सुदर्शन के पिताजी बोले, हे सुहृद ! जब सुदर्शन और मनोरमा दोनों ही समान गुण संपन्न हैं तब भला मणि-कांचन की जोड़ी किसे पसंद नहीं होगी ? मेरे लिये तो यह बात आनन्ददायक ही है। तभी श्रेष्ठी ने अपने सेवक को बुलाकर आज्ञा दी कि अपने नगर का जो ज्योतिर्विद श्रीधर नाम का प्रवीण ब्राह्मण विद्वान है उसे बुलाया जाय।

सेठ की आज्ञा पाकर सेवक ने शीघ्र ही श्रीधर ब्राह्मण को लाकर सेठजी के समक्ष प्रस्तुत किया। सेठजी ने भी ब्राह्मणजी को योग्य सन्मान के साथ आसन प्रदान किया।

तब ब्राह्मणजी बोले - आज युगल मित्र और प्रमुदित चित्त ने मुझे किस कारण यहाँ बुलाया है ?

अरे ब्राह्मणजी ! आप जैसे पुरुषों से भला और दूसरा काम हो भी क्या सकता है ? आज अपने पुत्र सुदर्शन के लग्न का शुभ मुहूर्त सुधवाना है। शुभ मुहूर्त के निर्णायक एक मात्र आप ही तो हो।

श्रेष्ठी की बात सुनकर ज्योतषी महोदय ने शीघ्र ही अपने उत्तम प्रमाणों से शोधकर वैशाख शुक्ला पंचमी का शुभ मुहूर्त दर्शाया।

ज्योतषी महोदय द्वारा दर्शाये गये शुभ मुहूर्त के अनुसार दोनों ही श्रेष्ठीयों के यहाँ खूब जोर शोर से तैयारियाँ प्रारंभ हो गईं। लग्न समय समीप आते ही दोनों के यहाँ सुन्दर लग्न मंडप रचाया गया, तुरही, शहनाई एवं वादिंत्र बजने लगे, परिवार की महिलायें मगंलाचार आदि गीत गाने लगीं। दोनों ही घर में हर्ष का वातावरण छा गया। वैशाख शुक्ला पंचमी के दिन सुदर्शनकुमार को सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषण से सजाकर सजे हुए मनोहर घोड़े पर बिठाकर खूब ठाठ बाट सहित कुमार की बारात नगर में घूमती हुई सेठ सागरदत्त के द्वार पर पहुँची। वहाँ वर राजा एवं बारातीजनों का योग्य स्वागत किया गया। उसके बाद वर-वधू को जनमंदिर ले जाया गया, जिनमंदिर में भगवान का दर्शन पूजन करने के उपरान्त लग्न मंडप में पंचपरमेष्ठी की एवं पंचजनों की साक्षी से दोनों का पाणिग्रहण संस्कार कराया गया। श्रेष्ठी सागरदत्त ने बारात में आये हुए व्यक्तियों का यथायोग्य भोजन पान एवं सत्कार किया। पाणीग्रहण के बाद अपने बेटी जमाई को भी वस्त्राभूषण आदि भेंट स्वरूप समर्पित किये। उसके बाद बारात ने अपने भवन की ओर प्रस्थान किया और कुछ ही समय में वर-वधू सहित श्रेष्ठी वृषभदास का आंगन वादिंत्रों की मधुर ध्वनियों से गूंजने लगा।

माता जिनमति सहित सौभाग्यबती महिलाओं ने द्वार पर मंगलाचार किया और ससन्मान वर-वधू को भवन प्रवेश कराया। वस्त्राभूषण से सुसज्जित वर-वधू देवकुमार और देववाला समान शोभ रहें हैं। पुण्य के प्रभाव से दोनों की मनोवांछित वस्तु मिल गई। अतः नवीन दम्पति के सुख के दिन ज्यों ज्यों बीतने लगे त्यों त्यों आपस के प्रेमसंबंध और घनिष्ठ होने लगे। समान रूप लावण्य, समान मानोवांछायें, समान ज्ञानाराधना, समान धर्म के उपासक वहाँ अशांति कहाँ से हो सकती है ? दोनों ही धार्मिक संस्कार से युक्त होने के कारण वे अपनी दिनचार्या का अधिकांश समय धर्माचरण में व्यतीत करते हुए गृहस्थोचित क्रिया कलाप करते थे। अतः

दोनों ही ज्ञानाराधना पूर्वक शांतिमय जीवन जीने लगे। इस प्रकार सुखमय जीवन के कुछ ही मांह बीतने पर मनोरमा ने गर्भ धारण किया। पवित्र आचार विचार के साथ धर्मोत्सव करते कराते हुए मनोरमा के नौ माह कहाँ बीत गये कुछ खबर ही नहीं पड़ी। और नौ मास पूर्ण होने पर अपने (माता-पिता) समान ही गुणों का धारक एक पुत्र को जन्म दिया। उसका जन्मोत्सव दादा-दादी, माता-पिता एवं बन्धुवर्गों ने बहुत ही उत्साह पूर्वक मनाया और सुन्दर कांति का धारक होने से उसका नाम सुकान्त रखा गया। वह बालक सभी की गोद में खेलते कूदते हुए वृद्धि को प्राप्त होने लगा।

भव्यों का भाग्य चमका

एक दिन चम्पापुर के उद्यान में आत्मिक प्रचुर स्वसंवेदन के भोक्ता, ज्ञान वैराग्य की मूर्ति, परम सुधारस का पान करने वाले, सिद्ध सादृश वीतरागी परम दिगम्बर संत जिनका नाम श्री समाधिगुप्त है उनका आगमन हुआ, चंपापुर का उद्यान संत चरणों से पवित्र हो गया। पूज्य मुनिवर महान ज्ञानवान एवं महान तपस्वी हैं। जिनके चरणकमल मनुष्यों, देवों आदि के द्वारा पूज्यनीय हैं। उनके आगमन के मंगल समाचार उद्यान रक्षक ने शीघ्र ही आकर राजा साहब को दे दिये।

पूज्य गुरुवर के आगमन के समाचार सुनते ही राजा साहब आनन्दित हो उठे। राजा ने तत्काल नगर में मुनिराज के दर्शनार्थ उद्यान में चलने की भेरी बजवा दी। सभी नगरवासी शुद्ध वस्त्र पहिनकर हाथों में उत्तम द्रव्यों की थाली लेकर राजदरबार पर एकत्रित हुए। राजा साहब भी अपने परिवारजनों एवं पुरजनों के साथ गजारूढ़ हो गुरुवर दर्शनार्थ चल दिये। उद्यान में पहुँचकर राजा सहित सभी जनों ने साक्षात् वीतरागता की मूर्ति ऐसे परम गुरुवर के दर्शन वंदन पूर्वक तीन प्रदक्षिणा देने के पश्चात् सभी गुरुपद पंकजों के समीप ही बैठ गये। योगीराज तो एकदम अड़िग ध्यानस्थ विराजमान थे। अहो ! गुरुराज शांत प्रशांत मुख मुद्रावंत अन्दर में आधि, व्याधि एवं उपाधि से रहित सुसमाधिवंत, आ हा हा ! एकाकी आत्माराधना में मस्त, धन्य प्रभो ! आप ही भूतल पर धन्य हो ! धर्मामृत के पिपासु सभी चातकबत बैठे हुए इस प्रकार विचार कर रहे थे कि अभी अभी हम सभी को गुरु वचनामृत का लाभ मिलेगा। बहुत समय की प्रतीक्षा के बाद मुनिवर का ध्यान भंग हुआ। वे देखते हैं कि चारों ओर धर्मलोभी चातकगण बैठे हुए हैं। योगीराज का ध्यान भंग हुआ देखकर सभी भक्तगण अंजुलि जोड़कर नतमस्तक हो गये। गुरुराज ने भक्तों की भावना जान ली।

गुरुवर की धर्मामृत वर्षा

हे भव्यो ! अपने जिनेन्द्र भगवान की ओंध्वनि में दया धर्म का वर्णन आया है। वह दया धर्म निज-पर की दया के भेद दो प्रकार का है। जिसमें प्रथम स्वदया ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। जिन मोह, राग, द्वेष भावों से आत्मा की आत्मिक शांति का घात होता है वास्तव में वही जिनागम प्रसिद्ध हिंसा है। क्योंकि यह प्राणी अपने से भिन्न किन्हीं पर पदार्थों में अहंकार ममकार करके मोही होता है, तो किन्हीं को अच्छा मानकर उनका संग्रह करने का राग करता है, उनके संरक्षण में रात दिन आकुल व्याकुल रहता है, उनके भोग-उपभोग में पागलबत लगा रहता है, किन्हीं को बुरा जानकर द्वेष करता है, उन्हें निरन्तर हटाने, नष्ट भ्रष्ट करने में व्यग्र रहता है, जिनके प्रति इसे द्वेष है, उनकी सत्ता भी जगत में नहीं रहने देना चाहता है, उनके अभाव के लिये अनेक उपाय करता रहता है। ऐसे भावों में सुखबुद्धि करते हुए अनन्त काल बीत गया परन्तु आत्मिक शांति की परछाईं भी नहीं मिली। इसलिये हे आत्मन् ! ये वैभाविकभाव आत्मघातक भाव हैं इनसे आत्मा के भावप्राणों की हिंसा होती है, इसलिये बुद्धिमानों को चाहिए की आत्माराधना द्वारा रत्नत्रय प्रगट कर अपनी अहिंसा रूप स्वदया करें इसे ही प्रथम कर्त्तव्य समझें। अपनी आत्मा में काषायिक भावों की उत्पत्ति न होना ही परम दया धर्म है, और जो स्वदया पालता है उसे ही जीवों के उत्पत्तिस्थानों का ज्ञान होता है, अतः वही पर जीवों की दया पाल सकता है।

इस प्रकार संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को तो धर्मामृत का उपदेश देकर उन्हें सन्मार्ग में लगाकर उन पर दया करते हैं और एकेन्द्रियादि प्राणियों की रक्षा करने का उपदेश संज्ञी जीवों को देते हैं और स्वयं उनकी दया पाल कर उन्हें अभयदान देते हैं। अतः निज पर की दया करके धर्ममार्ग में प्रवर्तना ही सुखकारी है। यही धर्म समस्त अभ्युदय का कारण है। पापनाशक के अर्थात् धर्मबुद्धि के सामने पाप उदित ही नहीं होते। जगत की अगणित कलाओं में धर्मकला ही सर्वश्रेष्ठ कला है। समस्त विज्ञानों का विज्ञान भी धर्म ही है। इस धर्म में ऐसी शक्ति है कि इसके प्रभाव में शिवसुन्दरी भी सहज ही आकर्षित होकर चली आती है।

इस धर्म को जीवन में उतारने के दो स्तर हैं। एक देशव्रत रूप और दूसरा महाव्रतरूप। प्रत्येक प्राणी को अपनी शक्ति अनुसार धर्म को धारण करके मुक्ति के पथिक बन जाना ही श्रेष्ठ है।

गुरुमुख से धर्म का स्वरूप श्रवणकर श्रेष्ठी वृषभदासजी विचारते हैं कि सर्वश्रेष्ठ धर्म तो मुनिधर्म ही है, यही मुक्ति का उत्कृष्ट कारण है ऐसा जानकर श्रेष्ठी

वृषभदास का हृदय संसार, देह, भोगों से विरक्त हो गया। वे मन ही मन सोचते हैं अरे रे, मैंने यह मानव भव का इतना समय मोहरूपी पंक में फंसकर व्यर्थ ही गवाँ दिया, यह नरभव तो काल से ग्रसित है, इसका एक क्षण का भी भरोसा नहीं, यह तो अनित्यता की गोद में ही बैठा है। जैसे अग्नि सूखे-गीले किसी भी प्रकार के ईंधन को नहीं छोड़ती, सभी को निर्दयता से भष्म कर देती है, वैसे ही यह मृत्यु बालक, युवानी, बुढ़ापा किसी को भी नहीं देखती है, यह तो निर्दयता से सबको कवलित कर ही जाती है। ये धन-वैभव, बन्धुवर्ग सब ही बिजली के चमकारे के समान क्षणभगुंर हैं। यह सुन्दर शरीर और युवावस्था अनेक रोगों से आक्रान्त है। ये इन्द्रियाँ एवं इन्द्रियों के भोग वर्तमान दुखःमय हैं और भावि दुःख के कारण हैं। ये पिता-पुत्र, भाई-बहन, पति-पत्नि सब लुटेरों की टोली है। एक अपना आतम ही सुखमय और सुख का कारण है। इसलिये मुझे चाहिए कि जबतक रोग जरा न ग्रहे, इन्द्रियाँ शक्तिहीन न हों उसके पूर्व ही निज स्वरूप में विश्रांत निस्तरंग चैतन्य का प्रतपन रूप अंतरंग तप तथा छह अंतरंग तप और छह बहिरंग इस प्रकार द्वादश तपों से अपने आत्मा को सोलहवान कंचन के समान परिशुद्ध कर लेना ही चाहिए। इस प्रकार विचारकर श्रेष्ठी वृषभदास ने सारा गृह भार अपने पुत्र सुदर्शनकुमार पर सौंपकर तथा वन में गुरुवर के निकट जाकर पूज्य गुरुवर को हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए बोले—हे परम दयानिधि ! हे जगत उद्धारक प्रभो ! में सांसारिक दुःखों की निवृति हेतु तथा अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन के लिये जिनदीक्षा का अभिलाषी हूँ। हे कृपानिधि ! मुझे अपने चरणों की शरण देकर अनुगृहीत कीजिए।

पूज्य गुरुवर ने श्रेष्ठी वृषभदास को मुनिपद के योग्य जानकर श्री सर्वज्ञदेव के आगम के अनुकूल विधिपूर्वक जिनदीक्षा प्रदान की। वृषभदास श्रावक ने भी गुरु आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए मिथ्यात्व, क्रोधादि कषाय यह चौदह प्रकार का अंतरंग परिग्रह और धन, धान्यादि दस प्रकार का बहिरंग परिग्रह का पंचपरमेष्ठी की साक्षी पूर्वक एवं पंचों की साक्षी तथा आत्म साक्षीपूर्वक त्याग कर दिया। केशों का लोंच करके तथा साधुपद के योग्य अट्ठाईस (२८) मूलगुणों को अंगीकार करके साक्षात् सिद्ध सादृश परम दिगम्बर योगीश्वर के रूप में शोभने लगे। अंतरंग में भी अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषाय के अभावपूर्वक होने वाली अकषाय दशा का प्रचुर स्वसंवेदन करने लगे। अहो, अहो, धन्य, धन्य योगीश्वर "क्षण क्षण में अन्तर्मुख हो सिद्धों से बातें करने लगे" देह होने पर भी देहातीत दशा का अनुभव करने लगे। अब तो श्री वृषभदास मुनीश्वर खूब मन भरके चैतन्यामृत का पान करते हुए जंगलबासी हो गये।

तभी सुदर्शनकुमार सहित राजा ने मुनीश्वर की भक्ति भाव से स्तुति की।

गुरुस्तुति

नित उठ ध्याऊं, गुण गाऊं, परम दिगम्बर साधु।
महाव्रत धारी – धारी, महाव्रतधारी ।।टेक।।
रागद्वेष नहिं लेश जिन्हों के मन में हैं - मन में हैं।
कनक कामिनी मोह काम नहीं तन में हैं - तन में हैं।
परिग्रह रहित निरारम्भी, ज्ञानी व ध्यानी तपसी।
नमो हितकारी, कारी, नमो हितकारी ।।टेक।।
शीत काल सरिता के तट पर जो रहते—जो रहते।
ग्रीष्म ऋतु गिरिराज शिखर चढ़ अघ दहते-अघ दहते।।
तरु तल रहकर वर्षा में विचलित न होते लख भय।
वन अंधियारी भारी, वन अंधियारी ।।टेक।।
कंचन कांच मसान-महल सम जिनके हैं-जिनके हैं।
अरि अपमान मान मित्रसम जिनके हैं-जिनके हैं।।
समदर्शी समता धारी नग्न दिगम्बर मुनिवर।
भव जल तारी तारी, भव जल तारी।।टेक।।
ऐसे परम तपोनिधि जहाँ जहाँ जाते हैं—जाते हैं।
परम शांति सुख लाभ जीव सब पाते हैं—पाते हैं।।
भव भव में सौभाग्य मिले, गुरुपद पूजूँ ध्याऊं।
वरुं शिवनारी – नारी वरुं शिवनारी।।टेक।।

अपने पतिराज को विरक्त देख सेठानी जिनमति को भी संसार, देह, भोगों से विरक्ति आ गई। वे भी विचारने लगीं कि इस संसार में सर्वत्र क्षणिकता ही नजर आ रही है और क्षणिकता के आश्रय से कभी भी सुख नहीं मिलता, जब जगत के सभी अचेतन पदार्थ सुख से विहीन ही हैं, तब फिर उनमें सुख की आशा करना ही मुर्खता है। अपना निजात्मा ही सुखमय है इसकी आराधना से ही अनन्त भव्य आत्माओं ने मोक्ष प्राप्त किया है, इसलिये अब मुझे भी सच्चे सुख के लिये अबिलम्ब जिनदीक्षा धारण कर लेना चाहिए। ऐसा विचारकर जिनमति भी पूज्य आर्यिका संघ के पास जाकर उनके चरणों में नतमस्तक हो जिनदीक्षा की प्रार्थना करने लगी।

पूज्य गणी आर्यिकाजी ने भी जिनमति को भव दुःखनाशक, मुक्ति मार्ग में गमन करने के लिये आत्महितकारी आर्यिका दीक्षा देकर अनुगृहीत किया। माता जिनमति आर्यिकाजी भी दो कषाय चौकड़ी के अभावपूर्वक उत्पन्न आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद का रसपान करने लगीं, एवं अपने पद के योग्य व्रतों का निर्दोष पालन करतीं हुईं आर्यिका संघ के साथ ही संयम की साधना के लिये जगह-जगह विहार करतीं हुईं ज्ञानाराधना करने लगीं। आर्यिका संघ भी न नगर से अति दूर और न अति निकट ऐसे एकांत स्थानों में वास करता है। एक सोलह हाथ की सफेद साड़ी और पीछी कमंडल को रखकर शेष समस्त परिग्रह का त्याग कर निष्परिग्राही हो विचरने लगीं। पूज्य गणी आर्यिकाजी के साथ रहकर आर्यिका जिनमतिजी ने भी अपनी भूमिका के योग्य उग्र-उग्र तपश्चरण कर उत्कृष्ट दशा को प्राप्त कर अनेक वर्षों तक साधना की और आयु का अंत निकट जानकर समता का आयतन स्वरूप समाधिपूर्वक देह त्यागकर लौकिक सुखों का भंडार ऐसा स्वर्गलोक प्राप्त किया।

मुनि संघ में पूज्य १०८ मुनिवर वृषभदासजी भी क्षण क्षण में अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करते हुए अशरीरीदशा की प्राप्ति के लिये अनेक वर्षों तक उग्र-उग्र तपों को तपते हुए आयु के अंत में निर्यापकाचार्य की आज्ञानुसार क्रमशः चार प्रकार के आहारों का त्याग कर प्रायोपगमन सन्यासधारण करके, देह त्यागकर स्वर्गधाम पधारे।

धन्य है साधक संतों की आराधना। कंचन को ज्यों ज्यों अग्नि का संयोग होता जाता है, त्यों त्यों शुद्ध, शुद्ध और परिशुद्ध होता जाता है। ठीक इसी तरह साधक संतों की स्वरूपरमणता प्रतिक्षण वृद्धिगत होती जाती है, कषायकण नष्ट होते

जाते हैं और प्रचुर स्वसंवेदन की परांकाष्ठा वही है परम समाधि उसका सुवर्ण अवसर पा अपनी साधना सफल कर लेते हैं।

चरमशरीरी कुमार सुदर्शन भी बचपन से धर्माचरण में परायण तो थे ही, परन्तु माता-पिता की जिनदीक्षा देखकर उनका प्रचुर स्वसंवेदन का स्मरण करके उनका मन भी उसी दशा के लिये ललक रहा है। इस गृहकार्य आदि का भार वास्तव में उन्हें अतिभार रूप हो गया है। उनकी दशा तो ऐसी हो रही है जैसे किसी रोगी को सुस्वादु मिष्ठ भोजन भी कराया जाय तो भी उसे सुहाता नहीं, कड़वा ही लगता है। साधक जीवों की जीवनचर्या भी सहज श्रावकवत ही होती है। मोक्ष के साधकों को कमजोरीवश इन्द्रिय-विषयों में प्रवर्तना पड़ता है फिर भी श्रद्धा में तो उसे हेय ही मानते हैं। उनसे छूटने के लिये वे सतत प्रयत्न परायण रहते हैं। कुमार सदा अणुव्रत, गुणव्रत एवं शिक्षाव्रतों का निर्दोष पालन करते हुए, स्वदारसंतोष व्रत को पालते हुए अन्य महिलाओं को माता, बहिन एवं पुत्रीवत मानते हैं। मिथ्यात्व, अन्याय एवं अभक्ष्य तो उनके जीवन में देखने को भी नहीं मिलते। सुदर्शनजी एवं मनोरमा की दैनिक चर्या सदा धर्माचरण से प्रारंभ होती है और प्रत्येक कार्य प्रमाद रहित होकर सावधानी पूर्वक करते हैं।

सेठ सुदर्शनकुमार भी अपने घर की देखभाल योग्य रीति से करते हैं। अपने पुत्र सुकान्त को भेद-विज्ञान, कला-कौशल आदि की शिक्षा स्वयं देते हैं। सुदर्शनजी देवपूजा, गुरु उपासना आदि श्रावक के षटकर्म नित प्रति पालते हुए अष्टमी और चतुर्दशी को गृहकार्य का पूर्णत: त्याग करके प्रोषधोपवास करते और रात्रि में मुनि सादृश सर्व परिग्रह का त्याग कर एकान्त स्थान (श्मशान) में कायोत्सर्गासन धारण कर ध्यान करते हैं। आठ मद, आठ शंकादि दोष, छह अनायतन एवं तीन मूढ़ता इन पच्चीस दोषों से रहित शुद्ध सम्यग्दर्शन पूर्वक पवित्र आचार-विचार और मंगल भावनाओं से धर्म में संलग्न रहते, तब साक्षात् धर्म की मूर्ति के समान शोभायमान होते थे।

इस धर्म की शीतल छाया में पनपने वाले पुण्य के योग्य से ही उन्हें ऐश्वर्य एवं भोगोपभोग के पदार्थों की प्राप्ति हुई है। ज्ञानी धर्मात्मा सदा अपने अक्षय निधान के भोगी होने से उन्हें अंतर बाह्य सभी जगह संतोष का ही अनुभव होता है। यह ध्रुव सत्य है कि ज्ञानी धर्मात्मा संयोगों से जितने दूर रहना चाहते हैं, संयोग उतने ही आ आकर उनके चरणों में समर्पित होते हैं। अवांछकों के ही धन, वैभव आदि अटूट सम्पदा प्राप्त होती है, वे उसके मध्य 'जल में भिन्न कमल की भाँति

रहते हैं' और स्वभाव की उग्र आराधना करने वाले तो सब त्यागकर एकाकी आराधना के लिये वन जंगल में चले जाते हैं। वहाँ जाकर स्वरूप एकाग्रता द्वारा अनुपम अतीन्द्रिय आनंद रूप मोक्ष का अक्षय सुख पा लेते हैं। ऐसा जान सेठ सुदर्शनजी मोक्ष की साधना में लगे हुए हैं और सभी को इसी साधना के लिये प्रेरणा भी दिया करते हैं।

सद्विचारवान सेठ सुदर्शनजी के धर्म का प्रभाव सर्वत्र छा गया था इसलिये ही सेठजी सभी गणमान्य व्यक्तियों एवं नगरवासियों के सन्माननीय हो गये हैं, आप सागर सम गुणगंभीर गिने जाते हैं। आप शीलव्रत में तो शिरोमणी हैं ही इससे हित के इच्छुक व्यक्तियों को यह शिक्षा लेनी चाहिए कि अपने मन, वचन एवं काय की एकाग्रता तथा शुद्धिपुर्वक एक धर्म को ही धारण करें। धर्म ही सुखों की खान है, धर्म ही प्राणियों का आभूषण है, धर्म ही तीन लोक और तीन काल में महान है, धर्म ही भव्यजीवों के नेत्र हैं, धर्म ही भवदधि से पार उतारने वाली नौका है, धर्म के सहारे से ही भव्य जीव सदा मोक्षमार्ग पर अग्रसर होते रहे हैं, ऐसा विचार कर अपना जीवन धर्ममय बना लेना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि धर्म के सामने बड़े से बड़े संकट भी सत्वविहीन हो जाते हैं और अभूतपूर्व सुख लीलामात्र में ही प्राप्त हो जाता हैं।

विपत्ति सेठ सुदर्शन पर

एक दिन सुदर्शन अपने मित्र कपिल के साथ धार्मिक वार्ता करते हुए जा रहे थे कि मित्र पत्नी कपिला की दृष्टि सहज ही सुदर्शन पर पड़ी, वह सेठ सुदर्शन का सौन्दर्य देखते ही रह गई, अरे ! देवों को भी मात कर देने वाला यह सेठ। बस फिर क्या था, कपिला तो उस पर मुग्ध हो गई और मन ही मन वह सोचने लगी—इतना सुन्दर पति जिसका है वह तो महा भाग्यशाली है। अब सुदर्शन के बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। जब तक मुझे उस सुन्दर युवा सुदर्शन का समागम नहीं मिलेगा तब तक मेरा जीवन भी मरण सादृश ही है। उससे मिलने का कोई रास्ता अवश्य ही निकालना चाहिए जिससे मैं भी अपनी मनोवांछा पूर्ण कर अपना जीवन सफल कर सकूँ। वह अब दिन रात एक ही बात के गुनतारे (विकल्प) में लगी हुई कोई मौका ढूंढ़ रही थी। परन्तु सेठ सुदर्शन के कान में कपिला की भावनाओं की भनक भी नहीं पड़ी, न ही वे यह सोच भी सकते थे कि रूप लावण्य एवं सर्व गुण सम्पन्न पति को पाकर भी कोई पत्नी ऐसी दुःचरित्री भी हो सकती है।

सुदर्शन जी तो प्रति दिन की भांति अपने इष्ट मित्रों के साथ कभी जिनमंदिर को, तो कभी वन की ओर सहज ही भ्रमण हेतु जाया करते थे। परन्तु कुछ दिनों से कुछ कारणवश कपिल बाहर गये हुए थे इसलिये मिलना नहीं हुआ था। इस कारण उस दिन वे अन्य मित्रों के साथ नगर के मार्ग से वन की ओर जा रहे थे, तभी उन्हें कपिला ने दूर से ही आते देखा तो हर्षित होने लगी, बस अब तो सुदर्शन अभी हमारे दरवाजे के पास से ही निकलेगें। कामवाण से बिंधी कपिला ने अपनी एक सखी को पुकार कर कहा-यहाँ आओ। वह सखी से अपने मन की बात बताती हुई बोली, हे सखी। इस सुदर्शन के बिना मेरा जीवन संकट में है, क्या पता मैं जीवित भी रहूँगी या नहीं, इसलिये मैं तुमसे निवेदन करती हूँ कि तुम सुदर्शन को किसी भी प्रकार से यहाँ ले आओ।

वह अविवेकी सखी दौड़ती हुई रास्ते में ही सुदर्शन के पास पहुँच कर हांफती हुई सुदर्शन से बोली, कुमार तुम कितने निष्ठुर हो। इतने दिनों से तुम्हारा मित्र कपिल तुम्हें नहीं मिला तो वहाँ चलकर देखा तो जाय कि क्या कारण है, कुछ विचार ही नहीं आया तुम्हें ? उनकी आँखों में कई दिनों से असह्य पीड़ा है, वे तो दर्द से बेचैन हैं। आप कैसे मित्र हो जो उनकी खबर तक पूछने नहीं आये।

सुदर्शन ने उत्तर दिया—मुझे पता ही नहीं कि कपिल वापस आ गया है, उसकी तबियत खराब के समाचार मालूम ही नहीं, अन्यथा ऐसा हो ही नहीं सकता था कि मैं मित्र की खबर पूछने न आऊँ, इतना कहकर सुदर्शन मित्रों सहित ही कपिल के घर की ओर चल दिये, कपिल के घर में पहुँचते ही दासी से पूछते हुए बोले, कहाँ है कपिल ?

दासी ने झूठ-मूठ ही कह दिया कि वे तो ऊपर सोये हुए हैं, आप ऊपर जाईए।

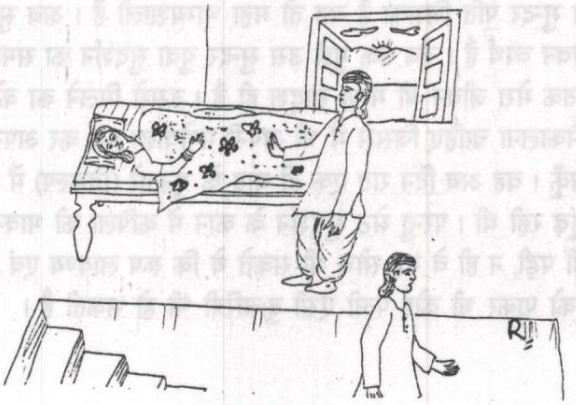

सुदर्शन अपने मित्रों को नीचे ही बैठा छोड़कर ऊपर चला गया। वहाँ एक सुन्दर सुसज्जित कोठरी में प्रवेश किया, वहाँ पर कपिला अपनी सखी को भेजकर चटाई के ऊपर मुलायम गद्दे को बिछाकर चादर ओढ़कर शय्या पर मुँह ढ़ककर बनकर सोई हुई थी, इस बात से सुदर्शन अपरिचित थे। सुदर्शन तो मित्र समझकर उसकी शय्या पर बैठ गया और पूछने लगा-कपिल क्या बात है ? अचानक ऐसा क्या हो गया है ? प्रथम तो कपिला ने अपने हाथ पर सुदर्शन का हाथ रख लिया सुदर्शन के बारबार समाचार पूछने पर भी न तो वह कुछ बोली और न ही चादर को मुँह पर से हटाया और सुदर्शन का हाथ पकड़कर अपने वक्षस्थल पर रख लिया, पश्चात् प्रेमपूर्वक करुण शब्दों में बोली, हे प्राण प्यारे ! जब से मैंने आपको देखा है तब से मैं अपने को भूल गई हूँ और मौत की शय्या पर पड़ी पड़ी आठों पहर आप की ही सुन्दरता निहारती रहती हूँ तथा आपको ही पाने की चिन्ता में ग्रसित रहती हूँ। आज बड़े सौभाग्यवश आपके दर्शन से मेरा मन शांत हुआ है। विषयों की भीख मांगती हुई बोली, हे दयालु ! मैं आपसे प्रेम की भिक्षा मांगती हूँ। आप मेरे साथ रमण करके मुझे तृप्त कीजिये।

कपिला द्वारा सुदर्शन का हाथ अपनी छाती पर रखे जाने से सुदर्शनजी तो एकदम काँप उठे। शर्म के मारे वे घबरा से गये। उनके तो छक्के छूट गये, अरे रे ! यह संकट अचानक कहाँ से आ पड़ा ? हे प्रभो ! इन शील के लुटेरों से कहाँ से पाला पड़ गया ? वे कपिला की घृणित बातों का क्या जबाव दें ? उनके सामने एक विकट समस्या खड़ी हो गई।

सुदर्शन ने नम्रतापूर्वक कहा—हे बहन ! आप जैसे पुरुष की चाह कर रही हो वैसा पुरुष मैं नहीं हूँ। मैं तो नपुंसक हूँ एवं विषयों से बहुत दूर हूँ। बहन ! मुझे कहते हुए लज्जा आती है कि आप जैसी कुलवधू के लिये दुराचार का काम करना महा पापकारक एवं कुलकलंक का कारण है। इस पाप से आप महा दुःखसंकटों में पड़ जाओगी। शीलभ्रष्टता से तुम्हारा यह भव तो बिगड़ेगा ही परन्तु भविष्य में भी नरक की असह्य वेदनाओं को भी सहना पड़ेगा और लोक में अपयश भी बहुत होगा। इसलिये आपको यही योग्य है कि सद्बुद्धि से इस कुलटा बुद्धि का एवं वैराग्य की तलवार से कामवासना को नष्ट भ्रष्ट करके जड़मूल से उखाड़ कर फेंक दो, और शील के सुन्दर आभूषणों से अपने को मंड़ित कर लो इसमें ही आपकी और आपके कुल की शोभा है। शील मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ श्रृंगार है। इसलिये अपने शील को कभी स्वप्न में भी मलीन नहीं करना चाहिए।

सुदर्शन की बातें सुनते ही कपिला को सुदर्शन के प्रति अति क्रोध सहित घृणा हो गई। जिससे वह क्रोधावेश में बोली—जा नपुंसक मेरी नजरों के सामने से शीघ्र ही हट जा।

सेठ सुदर्शन तो उसके पंजे से शीघ्र छूटना ही चाहते थे, उसके वचन सुनते ही सुदर्शन जी अति शीघ्रतापूर्वक ऊपर से नीचे आये और अपने मित्रों के साथ निर्विकार भाव से अपने घर को चले जा रहे हैं, रास्ते में मित्रों ने कपिल के समाचार पूछे, परंतु सुदर्शनजी तो कुछ बोले बिना ही उदासीनता पूर्वक घर पहुँच गये। वे मन ही मन सोचते हैं कि इस संसार में सबसे अधिक शील के ही लुटेरे हैं। वास्तव में कुलटा स्त्रियों को कितना भी सुन्दर से सुन्दर एवं सर्वगुण सम्पन्न पति मिला हो परन्तु उसकी नजर दूसरों पर ही जाती है। अब सुदर्शन सेठ शीलव्रत की सुरक्षा में और भी अधिक सावधान हो गये।

कुछ ही दिनों के बाद ऋतुराज बसंत चमक उठे, उसके प्रताप से जंगल भी मंगलमय हो गया, वनदेवी ने तो मानो सोलह श्रृंगार ही कर लिये हों। सर्वत्र नवीन-नवीन हरे हरे पत्ते, उनकी शोभा बढ़ाने वाले अनेक वर्णयुक्त पुष्प समूह, उसके रस के मतवाले भ्रमरों से वनराज गूंज रहे हैं। जहाँ देखो वहाँ बसन्त के शुभागमन से लताओं के अधरों पर हंसी ही हंसी दिखाई दे रही है। आम्रवृक्ष अपनी सुवासित मंजरी से फूलों की वर्षा कर रहे हैं, उनकी शाखाओं पर कोकिलायें अपने मधुर स्वर से मनमोहक गीत गा रही हैं, यद्यपि वनराज तो पहले से ही विराजमान था परन्तु बसन्तराज ने आकर उसकी शोभा में चार चाँद लगा दिये। बसन्तऋतु की छटा बहार देखने के लिये एक दिन राजा ने प्रजाजनों को यह संदेश भेजा कि आज सभी जनों को वन में बंसत ऋतु की छटा बहार देखने चलना है।

राजा साहब का संदेश प्रजाजनों के मन को खूब ही भा गया, सभीजन शीघ्र तैयार होकर अपने-अपने वाहनों पर आसीन हो राजदरबार में एकत्रित हुए, फिर राजा साहब के साथ ही आनंद करते हुए वन की ओर जा रहे हैं। राजा जी भी हाथी पर बैठकर आगे आगे चल रहे हैं उसकी रानी अभयमती भी अन्तःपुर की कपिला आदि प्रिय सखियों के साथ पुष्पक नामक रथ में बैठकर राजप्रसाद से निकलकर वन की ओर जा रही है। रानी के रथ के पीछे ही सेठ सुदर्शनजी का रथ भी है। सेठ जी एवं उसकी प्रिया मनोरमा अपने पुत्र सुकांत को गोद में बैठाये हुए, बसन्तराज को निहारने वन की ओर जा रहे हैं, उसी समय रानी अभयमती ने जरा पीछे को देखा-उसकी दृष्टि सुदर्शन के ऊपर पड़ी तो उसके सौन्दर्य को देखते ही रानी कामबाण से घायल हो गई। रानी अपनी सखी कपिला से पूछती है बालक को गोद में लिये हुए ये देवांगना समान सुन्दरी कौन है?

कपिला ने उत्तर दिया, हे रानी! यह सुन्दरी अपने नगर सेठ सुदर्शन की प्रिया मनोरमा है और उसकी गोद में बैठा हुआ सुकांत उसका ही पुत्र है।

सखी की बात सुनते ही रानी दीर्घश्वांस लेती हुई बोली, यह सुन्दरी अति सौभाग्यवान और भाग्यशाली है जिससे ही उसे सुकांत जैसा अनुपम रूपवंत पुत्र और जगत की आँखें चमका देने वाला रूप का धारक सुदर्शन जैसा पति मिला।

रानी की बात सुनते ही कपिला नाम की सखी रानी के अभिप्राय को समझ गई इसलिये वह बोली- रानीजी! मुझे तो एक विश्वासपात्र से पता चला है कि सुदर्शन नपुंसक है, फिर उसके पुत्र कैसे हुआ?

रानी ने कहा—सखी कपिला तेरी बात बिलकुल मिथ्या है, सुदर्शन बड़ा पुण्यात्मा पुरुष है और पुण्यात्मा नपुंसक नहीं हुआ करते। पापात्मा ही पुरुषत्वहीन होते हैं। किसी हीनबुद्धि वाले ने तुझसे सुदर्शन के विरुद्ध यह बात कह दी होगी।

कपिला बोली—मुझे तो उनके परिवार जनों से ही यह बात जानने को मिली है।

अभयमती बोली—उनके परिवार जनों ने तुझसे ऐसी गूढ़ बात क्यों कही? क्या करण बना था?

तब कपिला को सत्य कहना ही पड़ा महारानी साहब! मेरा कथन एकदम सत्य है और दूसरों की बात तो मैं क्या कहूँ लेकिन इस दुर्घटना का सामना मुझे भी करना पड़ा था। मैं भी सुदर्शन के रूप की शिकार हो गई थी, मेरे प्राण भी संकट में थे। एक दिन अवसर पाकर मैंने उससे प्रेमदान मांगा तब सुदर्शन ने स्वयं

ही अपने को नपुंसक बतलाया था, जिसे सुनते ही मुझे सुदर्शन से बहुत घृणा हो गई।

तब पुनः रानी बोली, हे सखी कपिला ! वास्तव में सुदर्शन बड़ा धर्मात्मा है। जहाँ पाप की बातें भी होती हों वहाँ वो खड़ा भी नहीं रहता, इसी से उस बुद्धिमान ने ऐसी बात कहकर तुझसे छुटकारा पाना चाहा होगा।

रानी की बात सुनते ही कपिला को क्रोध आया तब वह पापात्मा क्रोधावेश में लज्जा छोड़कर निन्दित स्त्रियों की तरह अशोभनीय शब्द बोलने लगी। हे राजरानी ! मैंने तो उसके वचन पर विश्वास कर लिया परन्तु आप तो रूपवान, धनवान एवं ऐश्वर्यवान हो, आप सभी प्रकार से योग्य हो जब जानें कि आप अपनी यह युवावस्था एवं सौभाग्य को उस अलौकिक पुरुष के साथ रमण करके सार्थक कर लो। उसे अपने वश में करलो।

कपिला द्वारा चढ़ाया गया रोष अभयमती पर चढ़ ही गया। उसके बहकाने में वह आ ही गई, कारण कि रानी तो सुदर्शन का सौन्दर्य देखते ही पहले से ही मोहित हो गई थी और वैसे ही वासना अंधी होती ही है, उस पर भी चढ़ाया गया रोष, बस फिर क्या था, वह तो सुदर्शन को फंसाने के लिये षड्यंत्र रचने लगी। प्रथम यंत्र तो यह कि उसने अपने पातिव्रत को तिलांजलि देकर यह प्रतिज्ञा की किया तो मैं सुदर्शन के साथ रमण करूँगी और कदाचित सुदर्शन नहीं मानेगा तो मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी उसे धर्म एवं शीलव्रत से भ्रष्ट करके ही रहूँगी। इस प्रकार अभिमान में प्रतिज्ञा करके वह वनविहार को आगे बढ़ी। उस कुलकलंकनी रानी ने वन में कुछ जलक्रीड़ा तो की परन्तु उसका कुटिल मन तो सुदर्शन में लगा था। इस कारण उसे वन में कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। वह उसी चिन्ता ही चिन्ता में अपने भवन को लौट आई। यहाँ भी उसका कामानल बढ़ता ही गया और काम के वेग में ही वह बेहोश सी होकर गिर पड़ी। उसकी ऐसी हालत देखकर उसकी धाय माता दौड़ी दौड़ी आई और अभयमती के मुख पर हाथ फेरती हुई बोली, बेटी ! तुम इतनी बेचेन क्यों हो रही हो, इसका कारण बतलाईए ?

तब अभयमती लोकलाज, मान-मर्यादा सभी को ताक में रखकर बोली- हे माता ! मैं अभी पूर्ण रूप से दूसरों के वश में हो गई हूँ, यदि मेरी ऐसी ही हालत कुछ दिन और रह गई तो अवश्य ही मैं मृत्यु शय्या पर दिखूँगी। इसलिये यदि आप मुझे जीवित देखना चाहती हो तो किसी भी प्रकार से आप मुझे मेरे प्यारे सुदर्शन से मिला दो, वह ही संजीवनी बनकर मुझे जीवनदान दे सकता है।

रानी की यह असाध्य वत अवस्था देख कर एवं कुत्सित भावना सुनकर धाय माता ने उसे प्रेमपूर्वक समझाया, हे देवी ! आप की यह इच्छा बहुत खराब एवं घृणा के योग्य है, आप जरा सोचो भी तो सही कि आप किसकी प्रिया हो ? आप इतने बड़े सम्राट की रानी, भला आप के पति में क्या कमी है ? वह भी तो सौन्दर्य का भंडार है, आप की सभी इच्छाओं को आपके मुँह से निकलते ही पूर्ण करने वाला सम्राट, आप जैसी कुलवान स्त्रियों को ऐसे जगतनिंद्य विचार क्या शोभा देते हैं ? ये आपके कुल को कलंकित करने वाले भाव हैं। क्या आप यह नहीं जानतीं कि इन पापभावों से मुझे नरकगति में वचनातीत दुख सहने पडेंगे। और राजा को पता चलते ही आप को किनता दुःख देगा ? आपको त्याग भी सकता है, और अपयश होगा सो अलग। बड़े ही दुःख की बात है कि कुलवधू को परपुरुषगमन करना तो दूर रहा उसका विचार भी अगणित दुःखों का कारण है, जिसे आप प्रत्यक्ष तो भोग ही रही हो।

हे बेटी ! ये आपके राज एवं ऐश्वर्य के पतन के कारण हैं। और फिर जगत प्रसिद्ध शील-शिरोमणी सुदर्शन को शील से भ्रष्ट करने में जब देवियाँ भी असमर्थ हैं, तब भला आप जैसी साधारण महिला की क्या सामर्थ्य ? वह एक स्व पत्नीव्रत के नियमानुकूल दूसरी स्त्रियों से बात भी नहीं करता, साथ ही वह नपुंसक भी कहा जाता है, तब फिर आप उसके संयोग से क्या सुख प्राप्त कर सकोगी ? दूसरी बात—आपका महल किसी मामूली व्यक्ति की झोपड़ी तो है नहीं जो चाहे वह प्रवेश कर आये। उसे तो बड़े-बड़े सात कोट घेरे हुए हैं, इसके अन्दर उस शीलवान को कैसे लाया जा सकता है ? इसलिये हे बेटी ! इस सर्वनाशकारी निंद्य विचार को आप छोड़ कर स्वस्थ्य हो जाओ, अपने चंचल चित्त को शांत करो बेटी, इसी में आप का हित है।

अभयमती पर विषय का भूत चढ़ा हुआ होने से उसे धाय माता का हितकारक उपदेश कुछ असर ही नहीं किया। उसे तो वे बोधवाक्य शूल के समान चुभते थे। काम के बेग ने उसे विवेक के नेत्रों से रहित कर दिया था। उसी कामवेग से घायल अभयमती पुनः धाय से बोली, सुनो माँ ! आपका अधिक उपदेश देना व्यर्थ है। मेरा तो निश्चय है कि मैं मेरे प्यारे सुदर्शन के साथ सुख न भोग सकी तो कोई चिन्ता की बात नहीं, क्योंकि वह सुख दूसरे के आधीन है। अगर कहीं वियोग ही हुआ तो उसके फलस्वरूप मरण से मुझे कौन रोक सकता है ? मैं अपने प्राणप्यारे का स्मरण करती-करती ही आनंद से प्राण तज दूंगी।

अभयमती का दुराग्रह देखकर धाय माता विचार में पड़ गई, इस धर्मसंकट से बचने का क्या उपाय है? यह तो अपनी जिद्द ही पकड़ कर पड़ी है। सर्वप्रथम तो सुदर्शन का मिलना ही दुर्लभ। दूसरे मैं तो इसकी माँ बराबर हूँ। जब माँ ही दुराचरण में सहयोग देंगी तब सदाचरण कौन सिखायेगा? तीसरी बात यदि कहीं इसकी पोल खुल गई तो इसके साथ-साथ मेरी भी मौत होगी। और इसका कार्य नहीं होगा तो न जाने ये मुझे कैसे-कैसे संकट में डाल देगी। इसके लिये क्या किया जाय? बहुत कुछ विचारने के बाद भी उसे कुछ उपाय नहीं सूझा तब विवश होकर अन्दर से कुपित हृदय के साथ धाय माता ने कहा—ऐसी अशुभ भावना मत करो, धैर्य रखो। मैं कुछ उपाय खोजती हूँ।

धाय माता को कोई उपाय नहीं सूझ रहा था इसलिये वह चिन्तित थी। रात्रि पूर्ण होने को आई थी। कहीं रानी ने सुबह फिर पूछा तो मैं क्या जबाव दूंगी? अचानक उसे एक उपाय सूझा वह प्रातः ही एक कुम्हार के पास गई और उससे कहकर सात पुरुष की मूर्तियाँ बनबाईं। उनमें से प्रतिपदा की रात्रि को एक मूर्ति अपने कन्धे पर रखकर राजप्रसाद के द्वार पर पहुँची और अपने कार्य की सफलता हेतु द्वारपाल को राजी कर लेना बहुत ही अनिवार्य है, उसके लिये छल-कपट की रचना की। वह यह थी कि द्वार पर आते ही द्वारपाल से पूछे बिना ही चुपचाप अन्दर की ओर बढ़ी। उसे अन्दर जाते देखकर द्वारपाल ने उसे अन्दर जाने से रोकते हुए कहा कौन है, ठहरिये, आप बिना पूछे अन्दर कैसे जा रही हो? क्या आप राजद्वार के नियमों से अपरिचित हो?

कल्पित क्रोध के साथ वह बोली—अरे मूर्ख! तुझे खबर नहीं कि मैं रानी के भवन में जा रही हूँ, मुझे रोकने वाला तूं होता कौन है?

द्वारपाल ने उत्तर दिया कि तूं कोई विवेकहीन जान पड़ती है। तुझे इतना भी होश नहीं कि अर्धरात्रि हो गई है, इसलिये रानी के भवनों में नहीं जाना चाहिए। चल निकल यहाँ से अभी तो मैं मुझे अन्दर नहीं जाने दूंगा।

द्वारपाल द्वारा रोके जाने पर भी वह न मानी और बलपूर्वक अन्दर की ओर बढ़ी तो द्वारपाल ने क्रोध में आकर उसे एक धक्का लगाया जिससे वह जमीन पर गिर पड़ी और उसके कन्धे पर रखे हुए पुतले के भी टुकड़े टुकडे हो गये। इससे उसे (धाय को) बहुत गुस्सा आया। वह गुस्से में रूख बदल कर बोली—ठहर जा मूरख तेरे कृत्य का मजा चखाती हूँ। तुझे पता नहीं कि महारानीजी का आज उपवास है, वे इस मृतिका निर्मित कामदेव की पूजा करके ही अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण

करेंगी, और तूंने उसे तोड़ डाला। देखना प्रातः होते ही महारानी तेरी क्या दशा करातीं हैं। तुझे खबर नहीं, वे तुझे सपरिवार फांसी भी दिलवा सकतीं हैं।

द्वारपाल धाय माता के वचन सुनते ही भय से काँपने लगा उसे उसके छल का जरा भी पता नहीं था, वह उसे सचमुच ही मानकर उस कपटी धाय के पैरों में गिर पड़ा और हाथ जोड़कर अपने अपराध की क्षमा मांगते हुए बोला—हे माते। मुझ दुखिया को क्षमा कीजिए मैं आगे कभी भी ऐसा अपराध नहीं करूँगा, आपको आने जाने में कभी भी हस्तक्षेप नहीं करूँगा।

कपटी धाय ने उसे अपने जाल में फंसा लिया और मन ही मन वह खूब खुशी हुई बहुत ही अच्छा हुआ अब मेरा हर कार्य निर्विघ्न होगा। बड़ी हंसी खुशी से वह रानी के भवन की ओर गई। शेष छह द्वारपालों को भी उसने इसी उपाय से अपने वश में कर लिया।

यह तो जगत प्रसिद्ध है कि धर्मात्मा सुदर्शन अष्टमी और चतुर्दशी को प्रोषधोपवास किया करते हैं। गृहकार्यों से पूर्णरूपेण निवृत्ति लेकर समस्त परिग्रह एवं देह के प्रति ममत्व त्यागकर शांतिपूर्वक रात्रि में एकान्त स्थान (श्मशान) में जाकर प्रतिमायोग धारण कर रात्रि का पूरा समय ध्यानस्थ अवस्था में ही व्यतीत करते हैं। योगानुयोग से उस दिन अष्टमी की तिथि थी और सूर्य ने भी अस्ताचल की राह ग्रहण कर ली थी और धर्मात्मा सुदर्शनजी भी अपने नियमानुसार एकान्त स्थान में जा प्रतिमायोग धारण करके खड़े थे। उस धाय ने अपना कार्य सफल करने के लिये योग्य अवसर पर लिया।

कूटनीति में कुशल धाय जहाँ सुदर्शनजी ध्यानस्थ खड़े हुए हैं वहाँ पहुँची, वह देखती है कि सुदर्शन तो भगवान के ध्यान में मग्न हैं। वास्तव में धाय मन में यह अच्छी तरह जानती थी कि जैसे कोई मुनिराजों पर उपसर्ग करे तो वे कभी अपने ध्यान से नहीं ड़िगते, वैसे ही ये सुदर्शन उपसर्ग वेष्ठित कोई मुनिराज वत ध्यान में मेरु समान अड़िग स्थित हैं। उतने समय तक तो सुदर्शन जी भी देह के प्रति निर्ममत्व हो देहातीत दशा में परम धैर्यवंत रहते थे। वे सागरवत गंभीर एवं पृथ्वीवत क्षमावान हैं। अत्यंत निर्मल जल के समान पवित्र चित्त के धारक तथा कर्मवन दहन को हुतासन के समान हैं। फिर भी कर्त्तव्य पालन और रागवश सुन्दर तन धारी सुदर्शन को एकाकी ध्यानस्थ देखते ही प्रथम तो धाय मन में कुछ सकुचाई, अरे ! इस सुदर्शनमेरु को कैसे ड़िगाया जाय ? उसने उनको ध्यान से भंग करने के लिये शक्कर मिश्रित जहर समान शब्द बोले।

हे सुदर्शन आप धन्य हैं ! आप ही महा पुण्यवान हो जो रानी अभयमती के मन में बसे, रानी आप को अपने हृदय से एक समय के लिये भी दूर नहीं करना चाहती। इसलिये मेरी भी यही भावना है कि आप रानी की बात स्वीकार करें, चलिये उठिए। रानी ने निवेदन किया है कि आप मेरे पर प्रसन्न होईए। इसी प्रकार विवेकशून्य वचनों से उसने बहुत देर तक सुदर्शन को ध्यान से विचलित करने का प्रयत्न किया परन्तु सुदर्शन तो सुदर्शनमेरु समान अड़िग रहे। धाय के प्रयत्नों का सुदर्शनजी पर कुछ भी असर नहीं पड़ा।

अप्रभावित मौनव्रतावलंबी सुदर्शन को देख धाय के क्रोध ने भयंकर ज्वाला का रूप धारण कर लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि वह दुष्टा, पापनी सुदर्शन से आकर लिपट गई और कामपीड़ा युक्त व्यक्ति की जितनी भी कुचेष्टायें हुआ करती हैं वे सभी उनके साथ करने लगी परन्तु उपसर्गयुक्त योगी समान सुदर्शन तो जाने पत्थर की मूर्ति हों। पत्थर की मूर्ति से जो भी टकरायेगा शिर उसका ही फूटेगा परन्तु पत्थर की मूर्ति को कुछ भी आंच आने वाली नहीं है। **शाश्वत ध्रुवधाम में तद्रूप हुई परिणति ने जब ध्रुवता का अवलंबन ले लिया है तब भला उसे चलायमान करने के लिये तीन लोक में ऐसी कौन सी सामर्थ्य है जो उसे विचलित कर सके ?**

जब धाय के सारे ही प्रयत्न, विफल हो गये, तब मानो सुदर्शनमेरु के चरणों में वे सभी नतमस्तक हो गये हों। 'खीजी बिल्ली खम्भा नोंचे' की कहावत वत् दष्टा ध्यानस्थ सुदर्शन को उठाकर अपने कंधे पर रख कर वहाँ से चल पड़ी। तब

भी वज्रशरीरी सुदर्शन तो वज्र ही रहे, वज्र को कौन हिला सकता है? कोई नहीं। दुस्साहसी धाय उसे कपड़े से आछन्न कर (ढककर) दुबुद्धि अभयमती के महल में लाकर रख दिया। दुबुद्धि की संगनी धाय तो अपने कार्य को करके कृतकृत्यता का अनुभव करने लगी। अब अभयमती का काम अभयमती जाने।

कामदेव समान रूपवंत सुदर्शन को लख कुलटा अभयमती तो अति आनंद का अनुभव करने लगी। मानो वह अपनी दुर्बुद्धि को आज साकार कर ही लेगी ऐसी भावना से वह आनंदित हो उठी। वह समझती थी कि अब तो तोता पिंजरे में आ ही गया है। अब मेरे से छूट कर जायेगा कहाँ? अब तो इसकी दो ही गति हो सकती हैं या तो मुझे अपनाये या मृत्यु को।

दुराचारणी अभयमती सुदर्शन के समक्ष आकर भोगों की भीख मांगने लगी। हे प्राणवल्लभ! मैं परम सत्य कहती हूँ कि मेरे हृदय में आपके अलावा मेरे रूप (पति के रूप) में और कोई नहीं बसा है। मेरे प्रेम के आप ही एकमात्र अधिकारी हो। आपका सौन्दर्य मेरे तन,मन एवं रोम-रोम में समाया हुआ है। मेरा सम्पूर्ण जीवन आपके चरणों में न्यौछावर है। अत: हे जीवनाधार! मेरी कामपीड़ा को शमन करके मुझे जीवनदान दो और आप भी अपना जीवन सफल समझो। ऐसे भोग तो देवों को भी दुर्लभ हैं और आपको आपके पुण्य प्रताप से सहज ही मिल गये हैं, तो उनकी उपेक्षा करना बुद्धिमानों को योग्य नहीं। इसप्रकार अनेक प्रकार से कामोत्पादक वचन कहे। परन्तु जिस सुदृढ़ किले में वज्र प्रवेश न कर सके वहाँ वचनावली की भला क्या ताकत? **कोई साधारण घास का तृणका थोड़े ही है जो फूंक में उड़ जाय। ज्यों ज्यों उपसर्ग बल करें त्यों त्यों परिणति स्वरूप मन्थर होती जाती है।**

'असफलता क्रोध के चरण चूमती है' इस उक्ति के अनुसार अभयमती अब दुर्मति पर सवार होकर झपट के सुदर्शन पर अपना रोष भुजाने लगी। उसने सुदर्शन को उठाकर अपनी शय्या पर पटका और हाथ पैर व्यवस्थित करके उसके अंग-उपांगों के साथ अपने कामदाह को शांत करने की कुचेष्टायें करने लगी।

परंतु हाय रे दुर्भाग्य। तूं जरा भी नहीं पसीजा। लेकिन यह ध्रुव सत्य है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता और जो वस्तु व्यवस्था से टकरायेगा वह अनंत संसार में गोता अवश्य ही खायेगा। उस समय सुदर्शन की दशा प्रायोपगमन सन्यासधारी श्रमण के समान हो रही थी, वे तो पाषाणवत निश्चेष्ट पड़े थे।

काम की शिकार अभयमती ने सोचा—यह तो आंख-कान बंद करके ऐसा पड़ा है, मानो वह अंधा और बहरा हो। मेरा रूप तो इसने देख ही नहीं है इसलिये वह सुदर्शन के नेत्रों को खोलकर उनके सामने अपने निर्वस्त्र बदन की सुन्दरता दिखाती हुई नृत्य, गान करने लगी, परंतु सुदर्शन के नेत्र तो पवित्र दृष्टिवंत थे। उस पवित्र दृष्टि का विषय तो वीतरागी मुखमुद्रा या जिनवाणी होती है। फलस्वरूप उनके नेत्र तत्काल बंद हो गये। पापनि अभयमती सोचती थी मेरे रूप में ऐसी आकर्षण शक्ति है कि भूल से भी यदि सुदर्शन एक बार मुझे देख लेगा तो अवश्य ही आकर्षित हो ही जायेगा। परन्तु उस पापनि की यह भावना भी निष्फल गई

यह तो भुवन विदित ही है कि धर्म के सामने कर्म कितने ही स्वांग धारण करके आवें, कैसा भी कटुक एवं मधुर स्वाद चखावें, नानाप्रकार के फलों को प्रदान करें परन्तु कर्म की हार अवश्य ही है। कारण कि कमजोरी स्वयं हार को वरमाला डालती है। उसकी उद्गमभूमि ही असफलता को जन्म देती है जो कि मोक्ष से हार खाकर संसार संवर्धनी होती है। शील लुटेरी शय्या पर पड़े हुए सेठ सुदर्शनजी मृतक कलेवर का स्वरूप चिंतन कर रहे हैं। जगत की सम्पूर्ण अशुचिता एवं घृणा कारक वस्तुओं से निर्मित यह चाम की मूर्ति, रोगों का घर, गीदड़, कूकर, शूकर की स्वादिष्ट भोज्य सामग्री, पापों की लोह चुम्बक यह देह, जब यह बनी ही मलों से है तब फिर यह मलों को ही आकर्षित करेगी, इसमें दूसरों का क्या दोष? इसलिये श्रेष्ठ तो यही है कि अब पुनः इसे धारण ही नहीं करना।

नासाग्र दृष्टिवंत हो देखें अदेही जीव को।
वे जन्म धारण न करें ना पियें जननी क्षीर को॥

वास्तव में केल के स्तंभ समान इस देह में कुछ भी सार नहीं है। इसलिये तो पूज्य पुराण पुरूषों ने अतीन्द्रिय आनंदमयी निजात्मा की आराधना से पूजित पंचमगति की कारणभूत पूजित पंचम भाव परिणति को प्रगट कर इस असार के मध्य भी सार ग्रहण कर लिया है जो कि हम जैसों के लिये भी करने योग्य कार्य है।

जब न्याय उपार्जित भोग उपभोग भी महानिंद्य हैं उनमें भी फंसना योग्य नहीं तीर्थंकर आदि महापुरुष भी जिन्हें सड़े हुए तृण के समान छोडकर चले गये, तब फिर अन्याय प्राप्त भोग तो साक्षात् ज्ञान-वैराग्य एवं रत्नत्रय रूपी धन के लुटेरे ही हैं। नरक-निगोद के वचनातीत अनंत दुःखों के दाता हैं, यश के लूटने वाले और निंदा के शिखर पर चढ़ाने वाले हैं। विषधर के डसने से तो एक ही बार मरण

होता है परंतु परदारा लम्पटपने से तो अगणित जन्म मरण के दुःख भोगना पड़ते हैं। इसलिये जहरीली नागिन को देह में लिपटाकर मरना तो श्रेष्ठ है परन्तु नरकदायनी परदारा को तो हंसी-खेल में भी छूना योग्य नहीं। सोने को ज्यों जयों अग्नि का ताप मिलता है त्यों त्यों स्वर्ण कांचन होता जाता है। मेरा महाभाग्य है कि मुझे परीक्षा देने का सुअवसर मिला जिससे मैं अपने को शुद्ध, शुद्ध एवं परिशुद्ध कर सका। बाधायें धर्म की शाश्वत शुद्धता को जगत प्रसिद्ध करतीं हैं। 'शील सदा जो नर पाले सो औरन की आपद टाले।'

शील स्वरूप निज ब्रह्म को शील ही है परमेश।
निज पर शील जो निरखते, होते वे शैलेश॥

मैं तो चैतन्यबिम्ब हूँ उसमें अब्रह्म का प्रवेश ही नहीं और आस्रव सदा अब्रह्ममय हैं, उसमें ब्रह्म का प्रवेश नहीं। जगत में प्रत्येक वस्तुयें अपने सहज स्वभावमय ही हैं, वे अपने स्वभाव का परित्याग कभी नहीं करतीं, तब फिर मेरे में अब्रह्म को स्थान कहाँ है? और मैं तो सहज ही ज्ञाता दृष्टा परमब्रह्म हूँ, जब मुझे पूजने वाली संवर, निर्जरा एवं मोक्ष की परिणतियों का भी मेरे अभेद्य ज्ञानगढ़ में प्रवेश नहीं तब फिर मेरे स्वरूप से विपरीत स्वभाव वाली आस्रव, बंध की परिणतियाँ मेरे में कैसे प्रवेश कर सकती हैं? जिसका मेरे में प्रवेश नहीं वो मुझे भावक बनके या ज्ञेय बनके विकार कैसे पदा करा सकता है? इस प्रकार अपने अकृत्रिम चेतनविलास में रमते रमते सुदर्शनजी ने उपसर्गों पर लीलामात्र में जय प्राप्त करली। ज्ञानानंद से पगी परिणति अपने आराध्य पंचपरमेष्ठी के नाम का जाप करने लगी। जैसें जहाँ घांस न हो वहाँ आग की चिनगारी का पड़ना धूल में मिलने के अलावा और कोई उपाय नहीं है अर्थात् उसे सत्वविहीन होना ही पड़ता है। वैसे ही अभयमती के अन्दर धधकने वाली काम की प्रचंड ज्वाला ने प्रथम तो उसे परास्त की घबराहट से घबरा दिया और अन्त में उसे सत्वविहीन भी कर दिया जिसे अभी सभी जन प्रत्यक्ष देखेंगे।

जब अभयमती ने देखा कि यह तो पाषाण बन गया है, तब अपनी पापसंगनी धाय को बुलाकर बोली इस पाषाण खंड को जहाँ से लाई हो वहाँ ही पटक आओ। धाय ने बाहर आकर देखा तो दिनकर के आगमन के शुभ लक्षण उदित हो चुके थे। उसने भीतर जाकर कहा—रानी जी अब बाहर ले जाने का समय नहीं है, प्रभात हो चुका है।

धाय की बात सुनकर दुराचारणी अभयमती सोच में पड़ गई। अपना कार्य सिद्ध न होने से वह पहले से ही कुपित तो थी ही और अपनी ही धाय से अपनी

आज्ञा भंग, हुई जानकर तथा पाप की पोल खुलने पर मौत का भय, अरे रे ! अब तो अभयमती का रूप क्रोध से कुपित भुजंग वत हो गया। जो सच्चे विषधर होते हैं वे किसी को काटने पर लाखों उपाय किये जावें उससे अपना जहर वापस लेने के लिये तो वह अपना विष वापस नहीं चूसता, परंतु अग्नि में गिरकर स्वयं नष्ट हो जाना मंजूर कर लेता है। उसी प्रकार अब अभयमती ने अपने ही हाथों एवं नखों से अपना पूरा शरीर नोंचकर लहुलुहान कर लिया, वस्त्र फाड़ ड़ाले, बाल बिखरा लिये और विद्रोहीबुद्धि से सुदर्शन को खड़ा कर दिया और फिर जोर, जोर से रोने लगी, चिल्लाने लगी, मुझे बचाओ, बचाओ, यह पापी मेरा शील लूटने आया है। मेरा पातिव्रत नष्ट करना चाहता है। बड़ा धर्मात्मा बना है, यह ढोंगी है, पापी है।

रानी की पुकार सुनते ही अनेक सेवकगण दौड़े, दौड़े आये और सुदर्शन को कैद कर लिया, कुछ सेवक दौड़े, दौड़े राजा के पास पहुँचे, हे राजन् ! कामान्ध, पापी सुदर्शन ने रनवास में घुसकर महारानी जी की बहुत बुरी हालत कर दी है, उनकी पूरी देह नखों से नोंच कर लहुलुहान कर ड़ाली है। रानी साहब की दशा देखी नहीं जा रही है।

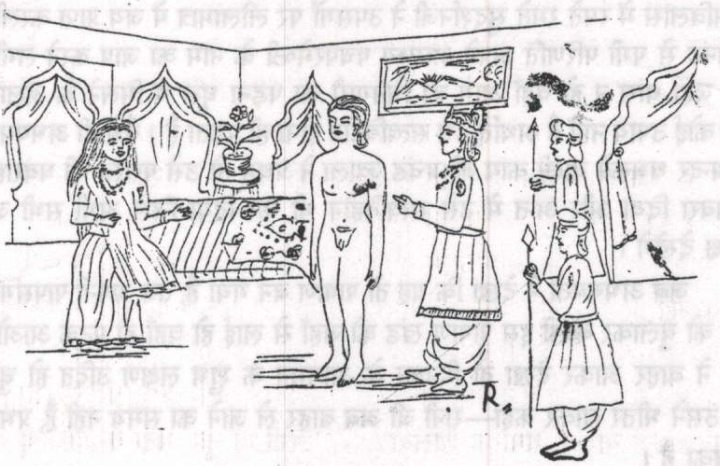

सेवक की बात सुनकर प्रथम तो राजा साहब संदेह में पड़ गये, फिर भी शंकाशील दशा में ही राजा साहब शयनागार में पहुँचे और रानी की हालत देखकर

उन्हें वह घटना सत्य सी भासने लगी। इसलिये राजा, धर्मात्मा सेठ सुदर्शन से सत्य बात जानने हेतु पूछने लगे। बहुत प्रयत्न किये परन्तु सुदर्शन तो ध्यानस्थ योगी वत खड़े ही रहे। यद्यपि सेवकगण भी अन्दर से शंकित थे कि ऐसा कार्य धर्मात्मा सुदर्शन नहीं कर सकता, फिर भी प्रत्यक्ष का अपलाप तो नहीं किया जा सकता। सुदर्शन पर लगाया गया कलंक का समाचार शीघ्र ही वायुवेग की तरह पूरे नगर में फैल गया। सभी नगरजनों का हृदय भी इस घटना के बारे में शंकित हो उठा, उनका मन कबूल नहीं कर रहा था, परन्तु सत्यता की अजानकारी में सभी ड़ावाँडोल थे। राजा ने प्रजा को बुलाकर कहा—आप लोग सत्यता की खोज कर मुझे निर्णय दीजिए।

नगरवासियों के द्वारा अनेक अनुनय-विनय पूर्वक एवं कठोरतापूर्वक पूछने पर भी सुदर्शनजी ने मौनव्रत भंग नहीं किया। उसका फल यह हुआ कि प्रजा ने भी राजा का साथ दिया, जिससे राजा ने सेवकों को आज्ञा दे दी कि इस कामी-पापी को मृत्युस्थल पर ले जाकर तलवार से मार ड़ालो।

राज्याज्ञा पाते ही यम के समान दुष्ट परिणामी सेवक, सुदर्शन के बाल पकड़कर उसे पूरे नगर में घसीटते हुए मृत्युस्थल पर ले गये।

सुदर्शन के प्राणदण्ड की खबर सुनते ही सम्पूर्ण नगरवासी जनों में हा-हाकार मच गया। सबके हृदयों पर संकट का पहाड़ टूट पड़ा, वे फूट फूटकर जोर, जोर से रोते हुए पुकार कर रहे हैं, हे धर्मरत्न! हे नीतिज्ञनाथ! आज आप से ऐसा अपराध बना हो ऐसा हम नहीं मान सकते, परंतु आपको सत्य कहने में क्या तकलीफ है? हे महाप्रज्ञ! आज आप ही शूली पर नहीं चढ़ाये जा रहे हो, हम लोग तो आपके पहले ही शूली पर चढ़ाये जाने कौश्अनुभव कर रहे हैं। हे दयालु! आप के साथ हम लोग भी अपने प्राण तज देंगे। क्या आपने मौन लेकर प्रजा के प्राण हरण नहीं किये? आप इतने कठोर क्यों हो गये हो? कुछ तो बोलिये कृपानाथ। हे दैव! तूं अनजाने इतना कुपित क्यों हो रहा है? हे शूली! हे तलवार! यदि तूं निरपराधी को दण्ड देगी तो तेरी शान, तेरी इज्जत सदा के लिये जाती रहेगी इसलिये ध्यान रखना यदि तूं धर्मात्मा शीलवान पर उतरेगी तो तुझे सदा के लिये धूली में पड़ा रहना पड़ेगा। आज तक के प्रमाण हैं कि राजा-प्रजा भले ही अन्यायी हुई हो परंतु तूं ने न्यायपथ का अवलबन लेकर धर्म का गौरव सदा टिकाये रखा है।

धर्मात्मा यमपुरी में अचल

धर्म शिरोमणी, शीलवान सुदर्शन जी मृत्यु के मुख में खड़े हैं, चांड़ाल ने उन पर तलवार चलाई परंतु तलवार ने अपना घातक स्वभाव तजकर शीलवान के कंठ का पुष्पहार बनने में अपनी शोभा समझी अथवा तो शूली ने मृत्यु का वरण न करके धर्मात्मा को स्वागत के रूप में दिव्य सिंहासन प्रदान किया। अरे। ये क्या हुआ? मृत्यु धर्मात्मा को देखते ही भयाक्रान्त हो भाग गई। अहो धर्म! तेरा प्रताप तो मृत्युस्थान को भी साधनाभूमि बना देता है। सारी प्रजा का बुलंद नाद "धर्मशिरोमणी की जय हो! शीलवान की जय हो! नीतिज्ञनाथ की जय हो! धैर्य के सागर की जय हो! प्रजा के प्राणों के रक्षक की जय हो। पंचम अन्तःकृत केवली की जय हो। चरमशरीरी नाथ की जय हो।" ऐसा जयकार गूंज उठा

इधर शील धर्म के प्रभाव से शूली भी सिंहासन हो गई इस आश्चर्य को देख चांडाल का क्रोध और भी गगनचुंबी हो गया। उधर देवलोक में धर्मात्मा के ऊपर उपसर्ग से देवों के आसन कंपायमान हो उठे। तब तत्काल तो वहाँ से ही देवों ने अपनी ऋद्धि के बल से शूली का सिंहासन बना दिया। फिर वहाँ से कोई पुण्यात्मा तत्काल उपसर्ग स्थल पर आ पहुँचा, उसने महात्मा सुदर्शन जी को नमस्कार कर मारने वाले दुष्टों को पत्थर के खंभों की तरह कील दिये।

सचमुच शीलधर्म से क्या-क्या संभव नहीं है? सब कुछ संभव है। दशलक्षण पूजा विधान में आता है कि 'शील धर्म जग में प्रधाना, शील धार सके न कमीना।' तीन लोक में सर्वश्रेष्ठ पद भी शील के प्रभाव से ही प्राप्त होता है। **तेरहवें गुणस्थान के अंत में अरहंत भगवान १८ हजार शील के उत्तर गुणों के धनी होकर शैलेषीनाथ बनते हैं।** सर्व दुःख संकट उपद्रवों का नाशक एवं सर्व सुखों का प्रदायक शील ही है। देवतागण भी शील के प्रताप से शीलवानों के सेवक होकर चरण पूजते हैं। शील के सच्चे पुजारी को देव, दानव, भूत, पिशाच, डांकिनी, शाकिनी आदि कोई भी दुःखी करने में समर्थ नहीं, तब फिर राजा जैसे क्षुद्र प्राणियों की क्या ताकत?

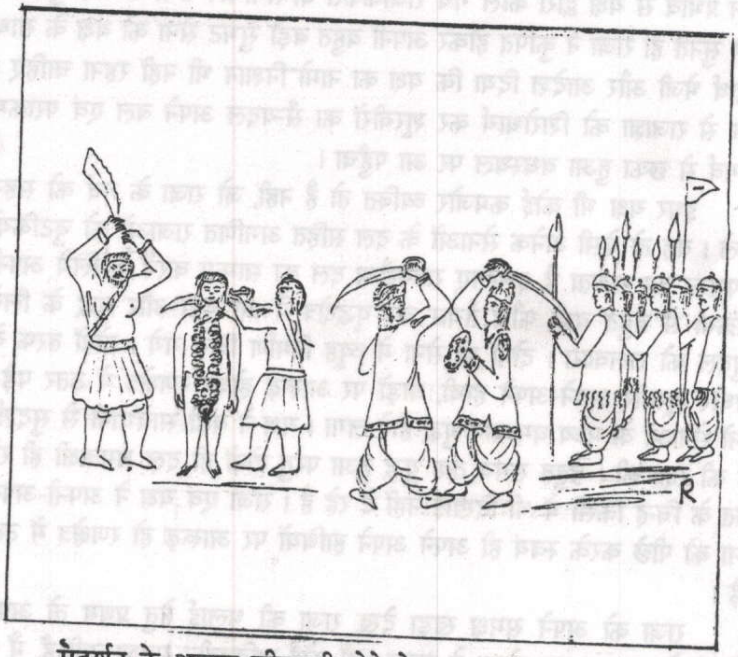

सुदर्शन के अच्युत शीलव्रती होने के कारण ही एक यक्ष ने उनके सभी विघ्नों को जड़मूल से उखाड़ फेंका एवं गुणानुरागी हो स्तुति करने लगा। शीलव्रत गुणों की खान है, शीलधर्म कल्पतरु एवं चिंतामणि है, शील ही हिमालय है, शील ही रत्नाकर है, शील ही यशनिधि है, शील ही शिव रमा का प्रतिकान्त है और शील

ही तीन लोक का श्रृंगार है, ऐसे शीलव्रत के साक्षात् मूर्तिमन्तों की मैं वंदना एवं अर्चना करता हूँ। शीलव्रत, इन्द्रों, नरेन्द्रों, देवेन्द्रों से पूजनीय है, शील ही भवदधितारक नौका है, शील ही मुक्तिरूपी दान का दाता है, इसलिये हे भव्यो ! शीलव्रत को सदा धारण करो।

मैं शील के सागर में निमग्न मुक्तात्माओं को प्रणाम करता हूँ तथा हे शीलव्रतधारी, गुणनिधि श्री सुदर्शनजी ! आप समान शील की शक्ति मुझे भी प्रदान कर कृपा बरसाईए।

संसार में गुणवानों में भी अवगुण ढूढ़ने वाले दुर्जन भी बहुत हुआ करते हैं और राजा के पक्षपाती तो अधिकतर हुआ ही करते हैं, उनने श्री सुदर्शन जी के शील प्रभाव से यक्ष द्वारा कीले गये राजकिंकरों के समाचार राजा से कह सुनाये। जिसे सुनते ही राजा ने कुपित होकर अपनी बहुत बड़ी सुभट सेना को यक्ष के साथ युद्धार्थ भेजी और आदेश दिया कि यक्ष का नामो निशान भी नहीं रहना चाहिए। उधर से राजाज्ञा को शिरोधार्य कर शूरवीरों का सैन्यदल अपने बल एवं पराक्रम के गर्व से छका हुआ वधस्थल पर आ पहुँचा।

इधर यक्ष भी कोई कमजोर व्यक्ति तो है नहीं, जो राजा के गर्व को सहन करले। वह तो ऐसी अनेक सेनाओं के दल सहित अगणित राजाओं को चुटकियों में परास्त कर सकता है, इसलिए राज्यसैन्य दल का सामना करने के लिये अपनी विक्रिया से बहुत बड़ी फौज तैयार कर युद्धक्षेत्र में आ डटा और युद्ध के लिये शत्रुदल को ललकारा। दोनों ही सेना में व्यूह निर्माण किये गये। दोनों तरफ के रणधीर शूरवीर अपने-अपने हाथी, घोड़ों पर आरूढ़ होकर रणक्षेत्र में उतर पड़े। दोनों सेनाओं के मध्य घमासान युद्ध होने लगा। यक्ष ने बड़ी सावधानी से सुदर्शन जी की रक्षा की। बहुत समय तक युद्ध हुआ परंतु दोनों ही दल समकक्षी ही रहे, जीत के चिन्ह किसी में भी दिखाई नहीं दे रहे हैं। राजा एवं यक्ष ने अपनी-अपनी सेना को पीछे करके स्वयं ही अपने अपने हाथियों पर आरूढ़ हो रणक्षेत्र में उतर पड़े।

राजा को अपने समक्ष खड़ा देख, राजा की भलाई हेतु प्रथम तो अपना परिचय देता हुआ यक्ष बोला, हे राजन् ! मैं कोई शक्तिहीन मनुष्य नहीं हूँ, मैं तो विक्रियाऋद्धि का धारक बड़ा देव हूँ, मेरी शक्ति भी अपार है। तूं जरा विचार कर देख कि मेरी शक्ति के समक्ष तेरी क्या चल सकती है ? मैं तेरे हितार्थ कहता हूँ कि तूं मेरे हाथों का शिकार मत बन। तूं महात्मा सुदर्शन की चिन्ता छोड़कर सुख से अपना राज्य भोग, इसमें ही तेरी भलाई है।

राजा भी क्षत्रिय की सन्तान है और रणसंग्राम में क्षत्रिय सिर कटाना मंजूर कर सकता है परंतु पीठ दिखाना नहीं। और उसमें भी रणभूमि में शत्रू सेना के सामने खड़ा हो तब फिर उसके गर्व का कोई ठिकाना रहता होगा क्या? नहीं कभी नहीं। धात्रीवाहन राजा तो उस समय गर्व के शिखर पर चढ़कर बोला, हे यक्ष! तुझ जैसे विक्रियाऋद्धि के धारण करने वाले करोड़ों यक्ष मेरे सेवक बन चुके हैं, तेरी विक्रिया का क्या आश्चर्य? फिर भी तूं इतना गर्व कर रहा है? तुझे अपनी किंकरता का शायद बोध नहीं है? हे अतुल शक्ति के अभिमान से दग्धायमान कीटयक्ष आ, तुझे आज ही यक्ष से कीट बना के दिखाता हूँ। मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है कि आज तेरी मृत्यु ही मुझसे टकराने को बाध्य कर रही है, वरना तेरी सामर्थ्य तो नहीं है।

राजा का दु:साहस का शौर्य देखकर यक्ष भी आश्चर्य में पड़ गया वह सोचता है कि अब इस अविवेकी के साथ युद्ध करना ही श्रेष्ठ होगा। बस दोनों के बीच भयानक युद्ध छिड़ गया। कुछ समय तक लड़ाई चलती रही परंतु परिणाम कुछ न निकला, जिसे देखकर राजा के रोष ने तीव्र गति पकड़ी और यक्ष के हाथी को शरों (वाणों) से बेध दिया, जिससे हाथी अशक्त हो पृथ्वी पर धड़ाम से गिर पड़ा।

राजा के पराक्रम को देख यक्ष और भी कुपित हो उठा। यक्ष ने पुन: अपनी विक्रिया से दूसरा हाथी बना लिया और उस पर आरूढ़ हो राजा के साथ युद्ध करने लगा। कुपित यक्ष ने भी अपने बाणों से राजा के हाथी की भी वैसी ही दशा कर दी।

इसलिये राजा भी दूसरे हाथी पर बैठकर यक्ष से युद्ध करने लगा। उसने यक्ष की ध्वजा को चीड़-फाड़ कर हाथी के प्राण ले लिये। तब यक्ष ने विक्रिया से एक विशाल रथ तैयार किया, उस पर आरूढ़ हो युद्ध करने लगा। दोनों में भयंकर युद्ध हुआ। दोनों ही युद्धदक्षता एवं बाणवर्षा में बड़े ही कुशल ज़ान पड़ते हैं। दोनों का प्राण विदारक युद्ध देखकर बेचारे डरपोकों के तो छक्के छूट गये, कोई तो लड़ाई करके मरते हैं वे तो डर के मारे ही मरे जा रहे हैं।

इस घमासान युद्ध में राजा ने अपने तीव्र बाणों से यक्ष का रथ भी नष्ट भ्रष्ट कर ड़ाला। यक्ष तब भी धरती पर से ही युद्ध करने लगा। परंतु कोई भी अपने शत्रु का अंश भी बरदाश्त नहीं कर सकता, तब फिर अभी तो शत्रु पूर्ण सुरक्षित ही है, तो राजा को चेन भी कैसे पड़ सकती है। राजा पर एक विचित्र वीरता का जोश

चढ़ा और उसने यक्ष का मस्तक तलवार से काट ड़ाला। तब यक्ष ने अपनी विक्रिया से दो यक्ष के रूप बना लिये। राजा ने पुनः दोनों यक्षों का सिरच्छेद कर ड़ाला। यक्ष ने पुनः चार यक्ष बना लिये। ज्यों ज्यों यक्षों के सिर बढ़ते गये त्यों त्यों राजा उनको क्रूरतावश काटता जाता है और यक्ष दुगुने दुगुने यक्षों का रूप बनाता जाता है। कुछ ही समय में युद्धस्थल यक्षों से भर गया अर्थात् युद्धक्षेत्र में यक्षों के अलावा और कोई नजर ही नहीं आ रहा है। तब राजा देखता है कि मैं तो यक्षों से घिरा जा रहा हूँ, इसलिये भयाक्रान्त हो वह वहाँ से भागा तो यक्षों ने उसका पीछा किया और जोर जोर से कहने लगे - ठहर दुष्ट, प्रजा का भक्षक, जोरू का गुलाम ठहर, देखता हूँ तूं भागकर कहाँ जाता है? तूं कहीं भी जा मैं तेरा इस भूतल पर नामोनिशान भी नहीं रहने दूंगा। हाँ यदि तूं इन महात्मा सुदर्शन की शरण ले तो मैं तुझे जिन्दा छोड़ सकता हूँ, अन्यथा तूं बच नहीं सकता।

प्राणों का भिखारी, डर के मारे मरणतुल्य राजा विवश होकर सुदर्शनजी की शरण में आया और हाथ जोड़कर नतमस्तक होकर करुण शब्दों में प्रार्थना करने लगा-हे महात्मन्। हे क्षमानिधि। मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये। इतना कहता हुआ राजा, सुदर्शनजी के चरणों में गिर पड़ा।

तब विवेकी धर्मात्मा श्री सुदर्शनजी ने उसे अपने हाथों से उठाकर अपने हृदय से लगाते हुए यक्ष से माफ कर देने को कहा। हे यक्षराज। शरणागतों को शरण देना महापुरुषों का काम है। हे अजेय वीर। आप कौन हो ? कहाँ से पधारे हो? किस हेतु आपका आगमन हुआ ?

तब अत्यंत विनयवंत यक्ष ने भक्तिभाव से हाथ जोड़कर सुदर्शनजी को प्रणाम करते हुए अपना परिचय दिया और प्रशंसावाचक मधुर शब्दों में कहने लगा हे सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमान! आप धन्यवाद के पात्र हो। बड़े-बड़े महात्मा भी आपके सामने तुच्छ हैं, धीरों के शिरोमणी, पुण्यात्माओं में महान, गुणवानों में भी उत्तम गुणी। आपकी महानता को जानने में वर्तमान काल में कोई भी समर्थ नहीं है। श्रावकों में भी श्रावकोत्तम सर्व के शिरमोर, सागरसम गंभीर, गुणों के निलय, शीलव्रत में लोकमान्य सुमेरूपर्वतवत अचल। देवताओं द्वारा पूज्यनीय। आपके शील के प्रभाव से हमारे आसन भी कांप उठे। स्वर्गवासी देवता भी आश्चर्य में पड़कर क्षुब्ध हो गये। हमारे स्वर्गलोक में विचित्र प्रकार की हलचल मच गई। आप काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, मान आदि शत्रुओं को तथा पंचेन्द्रियों को जीतने वाले संसार में धर्मपरायण शूरवीर योद्धा हो। असह्य बाधाओं के मध्य भी अस्पर्शी एवं अबाधित

शक्ति के कीर्तिमान स्तंभ हो। आपके शील की आकर्षण शक्ति से ही मैं यहाँ खिचा चला आया हूँ। आप समान शीलधर्म का लाभ मुझे भी प्राप्त हो। हे धैर्यवान ! हे गुणेश ! हे ब्रह्मचारी वीर। आपको मेरा सविनय प्रणाम।

उस पुण्यात्मा यक्ष ने अन्तर बाह्य शील को धारण करने वाले सेठ सुदर्शन जी की स्तुति एवं प्रशंसा की, पुष्प वृष्टि की, मंद मलय-मारुत बहाया एवं अनेक तरह के वादित्रों के मधुर जयकार के नाद से आकाश गूंजा दिया। इसके अतिरिक्त उसने अनेक तरह से धर्म एवं धर्मात्माओं की गौरव गरिमा को जगत प्रसिद्ध कर दिया। जिसे लखकर नगरवासी आश्चर्य चकित हो धर्म एवं धर्मात्मा के अनुरागी बनकर पुण्य का कोष भरने लगे और यक्ष के पुण्य संचय की तो सीमा ही न रही। उसके उपरांत यक्षदेव ने अभयमती की संपूर्ण छल विद्या एवं पोल को खोलकर जनता के समक्ष सत्यता को दर्शा दिया और राजा की मरी हुई सेना को जीवित कर स्वर्गलोक को चला गया।

वास्तव में सेना मरी नहीं थी वो तो यक्ष ने अपनी विक्रिया से सेना को मरी दिखाकर राजा का मनोबल तोड़ डालने का प्रयास किया था। यक्षदेव को राजा को परास्त करना कोई बड़ी बात नहीं थी, परन्तु धर्म एवं धर्मात्माओं की महिमा जगत प्रसिद्ध करने के लिये पापियों को परास्त करने का एक स्वांग रचा था, जिससे उन्हें भी धर्म का बोध पाठ मिले।

सुदर्शन को एक देवता के द्वारा बचाये जाने की खबर जब अभयमती को मिली और साथ ही यह पता चला कि राजा को मेरी छललीला एवं शील भ्रष्टता की पूरी पूरी जानकारी मिल चुकी है तब अभयमती स्वयं फांसी पर झूल गई और प्राण तज दिये। कुछ पापानुबंधी पुण्य पूर्व में किया था इसलिये वह पटना में एक व्यंतरणी हुई।

अभयमती की धाय जो सुदर्शन को श्मशान से कंधे पर रखकर लाई थी वह सुदर्शन के शील का प्रताप देखकर एवं अभयमती को फांसी पर चढ़ी हुई देखकर, राजा के भय के कारण शीघ्र ही गुप्त रूप से भाग कर पटना जा पहुँची। वहाँ पर देवदत्ता नामक वेश्या रहती थी। उससे भी अनेक प्रकार के प्रलोभन की बातें करके, अपना काम गांठ के वहीं रहने लगी। कुछ दिन बीतने के बाद उसने धीरे धीरे उस वेश्या को अपनी सारी रामायण सुना दी, सो ठीक ही है। क्योंकि समान भावना एवं समान काम वालों में सहज ही एकत्व हो जाया करता है।

धाय द्वारा सुनाये गये वृतान्त को सुनकर देवदत्ता सुदर्शन के संबंध में और भी विशेष जानकारी हेतु पूछने लगी। हे कपिले ! तुम सुदर्शन के संबंध में क्या बोल रही हो, उसे स्पष्ट कहीये।

तब छल-कपट की विषबेल धाय बोली, हे देवदत्ता सुदर्शन बड़ा विचित्र शीलव्रतधारी है। वह कपिला और मुझ जैसी सुन्दर एवं चतुर स्त्रियों को भी झूठ-मूठ की बातों से प्रताड़ने में समर्थ हो गया। एक दिन जब वह श्मशान में ध्यानस्थ खड़ा था, उस समय मैंने उसके मनको विकृत करने के लिये मन, वचन एवं काय द्वारा अनेक कुचेष्टायें कीं, मैं थक गई, पसीना पसीना हो गई, यहाँ तक कि मैंने उसे ड़िगाने के लिये कुछ भी बाकी नहीं रखा, मगर वह तो पाषाणवत अचल ध्यानमग्न खड़ा ही रहा। इसी प्रकार रानी अभयमती भी उसके रूप पर मुग्ध होकर कामभाव से बिंध गई, उसने अपने सैंकडों प्रयत्न किये, सुदर्शन को ड़िगाने के, यहाँ तक कहा कि यदि मेरा काम सफल नहीं होगा तो मैं तुझे मृत्युदण्ड दिलाऊंगी। सुदर्शन ने मृत्युदण्ड का सत्कार हंसते हंसते कर लिया परंतु अपने शीलव्रत से नहीं ड़िगे। उसके पीछे रानी मर भी गई, स्त्रियों के इस प्रकार के विघ्नों को भी सहकर वह अपने शीलव्रत में अड़िग ही रहा। ऐसा जितेन्द्रिय हमने कहीं नहीं देखा। पता नहीं उसके अन्दर ऐसी कौन सी शक्ति है।

इतना सुनते ही मदोन्मत देवदत्ता कहने लगी- तेरा कथन अक्षरशः सत्य है। क्योंकि; सभी स्त्रियों की ताकत नहीं कि सुदर्शन को अपने फंदे में फंसा लें। उन्हें पुरुषों को फंसाने की संपूर्ण कलायें आती ही कहाँ हैं ? वेश्या के अतिरिक्त अन्य कोई स्त्री उसके मन को विचलित नहीं कर सकती। भीख के टुकडों से पेट भरने वाली ब्राह्मणी धाय मोहनी मंत्र को क्या जाने ? और सदा रनवास के अन्दर रहने वाली रानी अभयमती स्त्रियों के विचित्र चरित्र को, पुरुषों के चिन्हों को और सेविका के काम में दक्षता कहाँ से लाये ? इस प्रकार उन सबकी निन्दा करने के बाद वह मूर्ख देवदत्ता प्रतिज्ञा करती हुई बोली-तुम लोगों से कुछ नहीं हुआ मुझे उसकी वास्तविक चाह है इसलिए अब देखना, मैं अपनी सारी शक्ति का उपयोग कर उसका शीलव्रत किस तरह नष्ट करती हूँ।

वेश्या का तो एक ही काम है इसलिए वह इससे अधिक सोच भी क्या सकती है? अरे रे ! मानवरत्न को उसने कंकडों में गुमा दिया। जिस मनुष्य भव के एक समय की कीमत तीन लोक की संपदा मिलकर भी नहीं चुका सकती, उसे व्यर्थ ही पापों में गमा रही है। अब देवदत्ता सुदर्शन को अपने फंदे में फंसाने की कला को मन ही मन गूंथने लगी।

इधर राजा ने सुदर्शनजी के समक्ष अपने किये हुए दुस्कृत्यों की निंदा, गर्हाकी तथा सुदर्शनजी की भूरी भूरी प्रशंसा करते हुए कहने लगे-हे नर श्रेष्ठ ! आपकी गंभीरता ने सागर की गंभीरता को भी उलांघ लिया। आप शील-शिरोमणि धर्मात्मा हैं। जगतपूज्य पुण्यात्मा हैं। आप वैश्यकुल भूषण मुझ अविचारी पापात्मा ने स्त्री की कुटीलता से अनभिज्ञ रहकर घोर अपराध किया है। हे क्षमासागर ! मेरे अपराधों को विस्मृत करके मुझे क्षमा दान दीजिये। आप तो धर्मात्मा हैं, आपके पास अपराधों का संग्रह होगा ही नहीं यह मैं निश्चय से जानता हूँ, फिर भी मुझे अत्यन्त अपराधबोध हो रहा है इसलिये मैं बारम्बार आपके चरणों में नतमस्तक हो क्षमा याचता हूँ। आप तो यथा नाम तथा गुणमय हो। जैसे सुदर्शनमेरू अकृत्रिम होने से सदा अचल है वैसे ही आप अपने अकृत्रिम चैतन्यबिम्ब के अवलंबन के बल से अचल हो, आपकी अचलता से मुझे अति प्रसन्नता है। इसलिये मैं अपना आधा राज्य आपको समर्पण करता हूँ, उसे आप सहर्ष स्वीकार कीजिए और मेरे समान ही राज्यसिंहासन पर आसीन हूजिए। आपके निरन्तर सहवास से मेरा जीवन भी पवित्र बनेगा, मैं भी आपके पदचिन्हों का अनुगामी बन सकूंगा।

यह सुनकर संसार, देह और भोगों से विरक्त चित्त सुदर्शनजी ने उत्तर दिया-हे राजन् ! आप वैसे ही प्रजा के पालक होने से मेरे तात समान हो और आपने मुझे पितावत स्नेह दिया है इसलिये भी मेरे तात हो। मुझे तो शत्रु और मित्र दोनों पर समताभाव है। मेरा तीन लोक में कोई दुश्मन ही नहीं तब फिर किस पर क्रोध करूँ ? मुझे किसी पर क्रोध नहीं है, हाँ यदि क्रोध है तो निजात्मा की अवनति कारक क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष, मोह एवं इन्द्रिय के विषय रूप शत्रुओं पर है उनके नाश हेतु मैं सतत प्रयत्न परायण हूँ। इसलिये इन विकारी भावों पर विजय प्राप्त करने हेतु मैंने वीतराग सर्वज्ञदेव द्वारा प्रणीत उत्तम क्षमादि धर्मों का आश्रयभूत निजज्ञायक आत्मा का अवलंबन लिया है। हे राजन् ! जब एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य का अत्यंताभाव है तब फिर कोई परद्रव्य मुझे कष्ट कैसे पहुँचा सकते हैं ?

स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ फल निश्चय ही वे देते।
करें आप फल देय अन्य तो स्वयं किसे निस्फल होते॥
अपने कर्म सिवाय जीव को कोई न फल देता कुछ भी।
पर देता है यह विचार तज स्थिर हो छोड़ प्रमाद बुद्धि॥

हे नृप ! मैं तो अपना महा पुण्योदय मानता हूँ कि मेरे शीलव्रत की परीक्षा हो गई। जिन-जिनने मेरी परीक्षा ली उन्हें मैं अपना गुरु मानता हूँ। फूल कांटों के मध्य ही सुरक्षित रहता है। वैसे ही धर्म संकटों की सघनता के मध्य ही चमकता है। उसकी यही कसौटी है, इसमें आपका या अन्य किसी का कुछ भी दोष नहीं है। यह तो निमित्त-नैमित्तिक संबंध ऐसा बनना ही था उसे कौन मेट सकता है ? इस वैराग्यवर्धक घटना ने मेरे ऊपर महान उपकार किया है जो मैं गृहस्थी की आकुलता-व्याकुलता से बचने के लिए तैयार हो गया हूँ। हे राजन् ! मेरा तो अफरगामी निर्णय है कि यदि इस भयंकर उपसर्ग में बध बंधन के कारण इस नश्वर काया ने विदाई ले ली तो मैं मुक्तिलाभ हेतु चतुर्विध आहार का त्याग करके ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप इन चार आराधनाओं को अंगीकार करता हूँ और यदि इस काया कि स्थिति अवशेष रही होगी तो मैं भवदुःखहरनी, अनन्तसुखदायनी, पारमेश्वरी जिनदीक्षा ही ग्रहण करूँगा। इसलिए हे राजन् ! अब तो में सिद्ध प्रभु का बारसदार बनकर शाश्वतपुरी का स्वराज्य ही लूंगा, संकटों के भंड़ार इस नश्वर राज्य से मुझे क्या प्रयोजन ? इस संसार के स्वांगों में मैं अब भूलकर भी नहीं फसूंगा। ये रूप संपदा, राजवैभव, ये तन, मन, धन, स्त्री-पुत्र आदि सभी संसार के हेतु हैं। शाश्वत सुखमय, सुख का कारण मेरा चैतन्य प्रभु ही है इसलिए अब सादि अनन्त काल के लिये अपनी चैतन्यमयी गुप्त गुफा में बसने के लिए जैनेश्वरी दीक्षा ही अबिलंब लेने का मैं उत्कट अभिलाषी हूँ।

राजा आदि के बारंबार अनुरोध करने पर भी अपनी प्रतिज्ञा में अचल सेठ सुदर्शनजी ने अपने पुत्र सुकान्त पर गृहभार सौंपकर जिनमंदिर में जा पहुँचे। उन्हीं के पीछे पीछे राजा एवं अन्य श्रावकगण भी आ पहुँचे। वहाँ पर वीतरागभाववाही जिनभगवंतों की पूजन एवं स्तुति की। उसके बाद मुक्ति के अभिलाषी सुदर्शनजी वन की ओर चल दिये, जहाँ पर साक्षात् रत्नत्रय की मूर्तिमंत गुरुवर पूज्य श्री विमलवाहनजी विराजमान हैं।

आ हा हा ! संसार बंधन से छूटने का परम हर्ष युक्त सुदर्शनजी गुरुवर को देखते ही आनन्द विभोर हो गये। प्रथम तो उनने गुरुराज के चरणों में नतमस्तक हो प्रणमन तथा वंदन किया और फिर गुरु पद पंकजों के भ्रमर बन समीप में ही बैठ गये और शांत-प्रशांत रस झरती वीतरागी मुखमुद्रा को टकटकी लगाकर देखने लगे।

शिव सौख्य प्रदायनी धर्मवर्षा

धर्मामृत के पिपासु सुदर्शन को देख, मोक्षमार्ग के प्रणेता, रत्नत्रय की मूर्ति गुरुवर ने परमधर्म का कवच धारण करने की प्रेरणावर्धक मंगलकारी धर्मोपदेश देना प्रारम्भ किया।

मुक्ति को पुरस्कृत करने वालो हे भव्य जीवो ! लोक में जाति अपेक्षा छह प्रकार के और संख्या अपेक्षा अनंतानंत द्रव्य हैं। जो इस प्रकार हैं- जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य। इनमें से कालद्रव्य को छोड़कर शेष पांच अस्तिकाय हैं तथा चैतन्यमय जीवद्रव्य को छोड़कर शेष पांच द्रव्य अचेतन हैं। इसी प्रकार जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। इन्हीं में पुण्य और पाप को मिलाने से नव पदार्थ हो जाते हैं।

छह द्रव्यों में जीवद्रव्य, सात तत्त्वों में जीवतत्त्व और नवपदार्थों में जीवपदार्थ ही साररूप है, हितरूप है। निजात्मा ही अपने लिये सारभूत है, क्योंकि इसमें ज्ञान भी है और सुख भी है, तथा इसे जानने वाले को ज्ञान भी होता है और सुख भी प्राप्त होता है। शेष पुद्गलादि पांच द्रव्यों में ज्ञान भी नहीं और सुख भी नहीं, और उनको जानने वाले को भी ज्ञान नहीं और सुख भी नहीं। इसलिये हित के इच्छुक को निज शुद्धात्मा ही उपादेय है। निज शुद्धात्मा का आश्रय ही मुक्ति के अनन्तसुख का दाता है और काम-क्रोध, मोह-माया आदि अनन्त दुःखों का नाशक है।

अनादि काल से यह जीव अपने को भूलकर अनन्त परपदार्थों को अपना मानकर अनन्त दुःख भोग रहा है, क्योंकि परद्रव्यों में सुख नहीं और इसने उनका भोगोपभोग सुख की आशा से ही किया है। कभी सुन्दर, सुस्वादु भोजन से तो कभी नेत्रों को तृप्तिदायक मनोहर रूपों को देखकर, कभी अनन्त पापों के पोषक एवं मोह, राग, द्वेष वर्धक वचनों को सुनकर, कभी ऋतु एवं इन्द्रियों के अनुकूल ठंडा-गरम, कोमल-कठोर, हल्का-भारी, रूखा-चिकना आदि अनेक प्रकार के विषय

भोगों के भोगने में उन्मत हुआ सुख मानता आ रहा। जिसमें विषय वासना में तो यह पागल प्राणी आ हा हा ! रूप लावण्य तो हाड़-मांस का पिंड है उस पर गीदड़ के समान झपटता है। जो कि समस्त कष्टों का घर है परन्तु इस पामर प्राणी को विषयों की भीख मांगने के अलावा और कुछ सूझता ही नहीं। पामर नजरों में प्रभुता के दर्शन करने की ताकत ही नहीं है तो प्रभुता का अवलोकन हो भी कैसे सकता ?

जो संयोग, संयोगीभाव एवं भेद से भिन्न एक अखण्ड, नित्य, अभेदतत्त्व निजात्मा उसका सर्वप्रथम ज्ञान के द्वारा यथार्थ निर्णय करके उसी की सम्यक्श्रद्धा उसका ही सम्यग्ज्ञान और उसी में निश्चल अनुभूतिरूप स्थिरता ऐसे सम्यक्रत्नत्रय को प्रगट करना चाहिए। इस रत्नत्रय रूप कारण के सेवन से मोक्ष रूपी कार्य प्रगट होता। यह सम्यग्दर्शन आठ मद, आठ शंकादि दोष, छह अनायतन और तीन मूढ़ता इस प्रकार पच्चीस दोषों से रहित होता है। संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय इन तीन दोषों से रहित सम्यग्ज्ञान और बारह प्रकार की अविरति से रहित शुद्ध सम्यग्चारित्र होता है।

इस सम्यग्चारित्र सहित अणुव्रतों का पालन करना देशव्रत कहलाता है और इसी के साथ महाव्रतों का पालन करना सकलव्रत कहलाता है। जिसे श्रावकधर्म एवं मुनिधर्म भी कहा जाता है। वे अणुव्रत इस प्रकार हैं-सम्यग्दर्शन के साथ सात व्यसनों का त्याग, आठ मूलगुणों का धारण, द्वादश प्रकार के व्रतों का पालन और ग्यारह प्रतिमाओं का ग्रहण, इन व्रतों का पालने वाला श्रावक होता है। इस अणुव्रत को एकदेशव्रत भी कहते हैं। देशव्रत या अणुव्रत का अर्थ जैसे अहिंसाणुव्रत जो गृहस्थों के होता है। उसके गृहस्थी के कार्यों में आरम्भ होता ही है, परन्तु वह सावधानी पूर्वक कार्य करता है फिर भी वह स्थावर जीवों की हिंसा से नहीं बच पाता है। वह त्रस हिंसा का ही त्यागी होता है। इसी प्रकार स्थूल झूंठ नहीं बोलता, स्थूल चोरी नहीं करता कि जिसके कारण वह राजदण्ड, प्रजादण्ड, समाजदण्ड का भागी होता हो। इसी प्रकार पंचों की एवं पंचपरमेष्ठी की साक्षी से विवाहित स्वदार संतोष व्रती होता है, अन्य महिलाओं को अपनी माता बहिन तथा पुत्रीवत मानता है। परिग्रह का संचय भी न्यायपूर्वक उचित वस्तु का ही करता है जो अपने लिये उपयोगी हो, वह सम्पूर्ण परिग्रह का त्यागी नहीं हो सकता।

महाव्रती के त्रस, स्थावर हिंसा का पूर्ण त्याग होता है। प्राण जावें तो भी कभी झूठ नहीं बोलते। मुनिराज तो भव्यों के कर्णों में सुखकारी लगें और हृदय

में अमृत समान मधुर लगें ऐसे हित, मित एवं प्रिय वचन बोलते हैं। मालिक की आज्ञा बिना मुनिराज किसी के खेत की मिट्टी भी नहीं लेते। स्व की एवं पर की जगत में जितनी भी महिलायें हैं, उन सबका मन, वचन, काय, कृत, कारित और अनुमोदना, इस प्रकार नवकोटि से उनके सेवन के त्यागी होने से परम ब्रह्मचारी होते हैं. ये पांच महाव्रत हैं एवं धन धान्य आदि दस प्रकार का बहिरंग परिग्रह और मिथ्यात्व, कषाय आदि चौदह प्रकार के अन्तरंग परिग्रह, इस प्रकार चौबीस प्रकार के परिग्रह के नवकोटि से त्यागी होते हैं। ये महाव्रत तीन कषाय चौकड़ी-अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान इस प्रकार बारह कषायों के अभावपूर्वक होने वाली शुद्धि की भूमिका में शोभते हैं।

वे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन पंचेन्द्रियों के विषयों के पूर्ण त्यागी होते हैं। इर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण तथा प्रतिष्ठापन, इस प्रकार इन पांच समितियों को पालते हैं। तीन गुप्ति को धारण करते हैं, तेरह प्रकार का चारित्र, दश धर्म, बारह प्रकार के तप, अट्ठाईस मूलगुण तथा साढ़े सेंतीस हजार प्रमाद के दोषों में से बहुत कुछ प्रमाद के अभावपूर्वक होने वाले गुणों के धारक होते हैं, इत्यादि अनेक प्रकार के गुण तथा संयम महाव्रत के साथ शोभते हैं।

निश्चय रत्नत्रय से सब तरह का अभ्युदय एवं ऋद्धि, सिद्धियाँ भी प्राप्त होतीं हैं। परमानन्दमय यह रत्नत्रय उसी भव में अथवा तीन, चार भव में मुक्ति दिलाने वाला होता है। यह मुक्ति सुन्दरी को वश करने के लिए वशीकरण मंत्र है। मोक्ष का परमार्थ मार्ग यही है, इसलिये बुद्धिमान, विवेकवानों को उचित है कि संसार का अधिपति इस मोहरिपु को नष्ट करके आत्मकल्याणार्थ इन निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय को धारण करें।

वैराग्य उत्पादक भवांतर

महा विमल बुद्धि के धारक, रत्नत्रय रूपी नौका को मोक्षमार्ग में कुशलता पूर्वक चलाने वाले, मुक्तिपति पूज्य श्री विमलवाहन मुनिपुंगव से धर्मामृत का पान करके, संसार क्लेश से थके चित्तवाले सुदर्शनजी अंजुली जोड़कर गुरुवर को नमस्कार करते हुए अपने हृदय की कुछ कमजोरी का कारण पूछने लगे– हे गुरुवर ! पर का प्रेम धर्मपथ का महा बाधक है, यह प्रत्यक्ष ज्ञात होते हुए भी मनोरमा के प्रति मेरा प्रेम क्यों नहीं छूटता ? कृपया इसका कारण दर्शाकर मुझपर कृपा कीजिए। तथा किस पुण्योदय से ये धन-वैभव एवं रूप संपदा प्राप्त हुईं हैं यह भी बतलाईए ?

पूज्य गुरुवर द्वारा वैराग्योत्पादक पूर्व भवांतरों का वर्णन—

हे महाप्रज्ञ ! धर्म-कर्म से पवित्र इस भरतक्षेत्र के सुविख्यात विंध्यदेश में अनेक प्रकार की कुशलता का भंड़ार एक कौशल नाम का नगर था। जो अनेक प्रकार के धन-धान्य, फल-फूलों से सम्पन्न था, वहाँ के नदी, सरोवर सदा अपनी शीतलतायुक्त अविरल धारा से नगरजनों को तृप्ति प्रदान करते रहते थे। जो अनेक प्रकार की चित्र कलाओं से युक्त गगनचुंबी जिनालयों से शोभायमान था। वहाँ के नर-नारी देव लोक समान भौतिक सुखसंपदा से संपन्न अपने हितार्थ सदा जिनेन्द्रदेव के दर्शन, पूजन में प्रीतिवंत थे और मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविका या ऋषि, मुनि, अनगार एवं साधु इस प्रकार चतर्विध संघ के आवागमन के कारण पवित्र था। श्रावकगण भी आत्मसाधक संतों को चार प्रकार के दान देकर अपने को कृतकृत्य अनुभवते थे।

अनेक राज्य योग्य शुभ लक्षणों से युक्त, पुत्रवत प्रजा का पालक, सन्मार्ग प्रदाता, प्रजा का हितैषी भूपाल नाम का राजा था। उसकी वसुधा समान गुणों की धारक वसुन्धरा नाम की रानी थी। उनके अति शूरवीर और विचक्षण प्रज्ञावंत एक लोकपाल नाम का पुत्र था। इस प्रकार पुत्र-पौत्रादि परिवार युक्त भूपाल नृप राज्य करता हुआ सुख पूर्वक तिष्ठ रहा था "यथा नाम तथा गुण" सम्पन्न राजा के राज्य में सभी प्रजा वास्तव में निर्विघ्नता पूर्वक शांतिमय जीवन जीती थी।

एक बार उस राजा के अनेक प्रकार की रचनाओं युक्त सिंहद्वार पर प्रजा ने अरक्षा से पीड़ित दुःख युक्त स्वर में जोर जोर से क्रन्दन किया, हे देव ! मेरी रक्षा करो ! रक्षा करो।

प्रजा का दुखित स्वर सुनकर राजा ने अनन्तबुद्धि नाम के मंत्री को बुलाकर पूछा, 'मंत्री यह दुख भरा स्वर प्रजा का कहाँ से आ रहा है ?'

मंत्री ने कहा हे राजन् ! अपने नगर की दक्षिण दिशा की ओर एक विंध्यगिरि नाम का बड़ा पर्वत है, उस पर एक महाबली व्याघ्र नाम का भील अपनी केरंगी नाम की पत्नी सहित बास करता है, वह दुष्टात्मा वास्तव में व्याघ्र के समान ही क्रूर है, मानो साक्षात् यम ही हो। वह मदों से मदोन्मत हुआ सदा भयानक रूप धारण कर अपने हाथों में धनुर्दण्ड लिये हुए ही भ्रमण करता रहता है। इसलिये हे राजन् ! वह पापी प्रजा को अनेक प्रकार से पीड़ित करता रहता है। उससे अपनी रक्षा हेतु

यह प्रजा आपके द्वार पर मेरू को भी विगलित कर देने वाले स्वर से पुकार कर रही है।

मंत्री के वचन सुनकर राजा ने तत्काल सेनापति को आदेश दिया—उस दुष्ट को शीघ्र बन्दी बनाकर यहाँ लाया जाय। मैं अभी उसे प्रजा को प्रताड़ित करने का मजा चखा देता हूँ।

वास्तव में प्रजा, राजा का प्राण हुआ करती है और अपने प्राणों को पीड़ित देख, भला इस भूतल पर कौन सुख की स्वांस ले सकता है ? नीतिज्ञ राजा के लिए प्रजा को दुःख देने की बात तो बहुत दूर रही मगर दुःख की कल्पना भी सहन नहीं हो सकती।

राजा का आदेश पाकर शीघ्र ही सेनापति अस्त्र-शस्त्र सहित अपनी सेना को लेकर विंध्यगिरि पर्वत पर पहुँचा और भिल्लराज को युद्ध के लिये ललकारा।

भिल्लराज और सेनापति में भयंकर युद्ध छिड़ गया। परन्तु बलवान भील ने सेनापति को परास्त कर दिया। इस कारण सेनापति अपने मानभंग से संत्रस्त होकर अपने नगर में आकर राजा को वहाँ की परिस्थिति का ज्ञान कराने लगा।

सेनापति की पराजय के समाचार सुनते ही भूपाल राजा क्रोध से तपतपायमान होता हुआ भील से लड़ने के लिये जाने लगा। युद्ध के लिये उद्यत राजा को देख राजपुत्र लोकपाल जो कि अस्त्र-शस्त्र आदि सभी विद्याओं में पारंगत था वह विनयपूर्वक बोला—हे तात ! मेरे रहते हुए आपका जाना उचित नहीं है। भीलराज का सामना मैं ही करूँगा, मुझे आज्ञा दीजिए।

राजा भूपाल ने अपने पुत्र की रणकौशलता देखते हुए युद्ध की आज्ञा दे दी। पिता की आज्ञा पाकर लोकपाल ने शीघ्र ही सदल-बल रणक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया और कुछ ही समय में विंध्यगिरि पर जा पहुँचा और भिल्लराज को ललकारा। बस फिर क्या था, लोकपाल और भील के बीच घमासान युद्ध छिड़ गया, परन्तु भील को काल पुकार रहा था इस कारण लोकपाल के निमित्त से उसकी जीवनलीला, लीलामात्र में ही समाप्त हो गई। "न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी"। उसके बाद लोकपाल अपनी सेना सहित जीत नगाड़े बजाता हुआ अपने नगर को आ गया। लोक में ऐसी कहावत चलती है न कि "वसुधा दुर्जनों को आधार नहीं देती।"

व्याघ्र भील की जीवनलीला समाप्त होते ही प्रजाजनों ने निराकुलता की स्वांस ली और राजा ने भी प्रजा को आनंदित देख शांति का अनुभव किया।

अपने किये क्रूर कर्मों के फलस्वरूप भीलपति व्याघ्र वत्सदेश के गांव में श्वान (कूकर) के रूप में जन्मा। और कूकुरों की तो आदत होती ही है कि कोई भी व्यक्ति निकला तो उसे भोंकना और उसके पीछे लग जाना। एक दिन वह कूकर एक ग्वाले की स्त्री के पीछे लग गया, वह कौशाम्बी को जा रही थी तो वह कूकर भी उसके साथ कौशाम्बी में पहुँच गया, वहाँ एक जिनमंदिर के पड़ोस में रहने लगा और वहाँ उसने कुयोनियों के कारणभूत पापभावों का नाशक कुछ पुण्य का संचय किया। उसके फलस्वरूप वहाँ से मरकर वह चम्पानगरी के सिंहप्रिय नाम के शिकारी की स्त्री सिंहनी के गर्भ से लोध नामक पुत्र हुआ। दुर्भाग्य के उदय से उसके माता-पिता बचपन में ही परलोक सिधार गये। उसके ऊपर संकटों का पहाड़ टूट पड़ा। एक तो पहले से ही गरीब और अब तो उसकी गरीबी का कहना भी क्या ? उसकी देख भाल करने वाला कोई नहीं रहा होने से भूख प्यास की असह्य वेदना को सहते हुए उसने अपने प्राण तज दिये और उसी चम्पानगरी में एक ग्वाले के रूप में जन्म लिया। उसके माता-पिता ने उसका नाम सुभग रखा। बालक सुभग अपने कुल में होने वाले कार्यों को देख देखकर उसी के अनुरूप बाल्य चेष्टायें किया करता था। जब ५-६ वर्ष का हुआ तो वह भी अपने पिता के साथ वन में गायें चराने जाया करता था, इसलिए उसे जंगल में अच्छा लगने लगा। जब सुभग 10-12 वर्ष का हुआ तो उसके पिता ने उसे सेठ वृषभदास की गायें चराने एवं उनकी देखभाल करने में लगा दिया।

वह ग्वाल बाल्य लघुवयः में ही सेठ वृषभदासजी की गायों का पालक बन गया। यद्यपि वह जाति से तो ग्वाला था परन्तु स्वभाव एवं विचारों से जैन प्रतीत होता था। उस भाग्यवान को श्रेष्ठी वृषभदास के मुख से वीतरागी देव, शास्त्र, गुरुओं की महिमा श्रवण करने का लाभ बारंबार मिला करता था। कभी-कभी तो आहार चर्या को पधारे हुए दिगम्बर संतों के पावन दर्शन का एवं परम आनन्ददायनी अमृत वाणी के श्रवण का सौभाग्य भी उसे प्राप्त हुआ करता था। सुभग भी गुरुवर द्वारा प्रदत्त ज्ञानदान को भक्तिभाव से अपने में अवधारण करता था। वह गुरुवर की वीतरागी शांत मुख मुद्रा को टकटकी लगाकर देखता ही रहता था। कभी कभी सेठ जी के साथ जिनमंदिर में भी जाया करता था और भाव-विभोर हो जिनवर देव की वंदना करता था। इसलिये उसे जिनधर्म बहुत अच्छा लगता था। पुत्रविहीन सेठ वृषभदास और जिनमति उसकी धार्मिक वृत्ति देखकर उस पर बहुत स्नेह करते थे।

जातिगत स्वभाव के कारण सुभग गायों का पालन-पोषण भी भली भांति करता था। प्रतिदिन बालक सुभग प्रातःकाल भोजनादि से निवृत्त होकर सेठजी की गायों को लेकर चराने के लिये जंगल में चला जाया करता था। वहाँ पर गायों को प्रेमपूर्वक चराता रहता तथा जंगल का स्वाभाविक दृश्य एवं वृक्ष, पहाड़, नदी, झरनों आदि को देखकर प्रत्येक वस्तु का महत्व तथा उपयोगिता का विचार करता रहता और संध्याकाल समीप आते ही वह गायों को लेकर घर को लौट आया करता था। जब घर आता तो सेठजी उससे उसकी कुशलता के समाचार पूछा करते थे। यदि कोई असुविधा या कठिनाई वह कहता तो सेठजी उसे शीघ्र ही दूर करने का प्रयत्न किया करते थे। सेठानी जिनमति भी सुभग के भोजन आदि की व्यवस्था का अच्छी तरह ध्यान रखती थी, वह उसे पुत्रवत ही स्नेह देती थी। और सुभग भी अपने मां-बाप को भूलकर इन्हें ही अपने माता-पिता माना करता था।

जंगल में मुनिवर दर्शन

एक दिन सोने का सूर्य ऊगा और सुभग का भाग्य चमक उठा। जिस जंगल में सुभग गायें चराने जाया करता था उसी जंगल में एक वृक्ष के नीचे वीतरागी मुखमुद्रावंत, चारणऋद्धिधारक युगल मुनिवर को ध्यानस्थ विराजमान देखते ही उसका मन मयूर भक्ति से नांच उठा, वह दौड़ा, दौड़ा मुनिराजों के पास पहुँचा और चरणों में नमस्कार करके गुरु स्तुति करने लगा—

महाभाग्य मिला सुअवसर आपकी पाई शरण।
शीघ्र ही भवज्वाला बुझा दो विनय है तारण तरण॥
महा मंगलमयी गुरु तुम मुक्ति के भरतार हो।
शांति के करतार हो प्रभु शांति के आधार हो॥

गुरु पादपंकजों के समीप में खड़ा हुआ सुभग विचार कर रहा था कि जब मैं सेठजी के साथ धर्मस्थानों में जाता हूँ और आहार लेने हेतु ग्राम में पधारे हुये मुनिवरों को देख कर सेठजी बहुत महिमा गाते हुए मुझसे कहते हैं कि – ये हमारे गुरुराज हैं। लेकिन मेरे महाभाग्य से आज मैं यहाँ अकेला ही हूँ इसलिये ये गुरु महाराज तो मेरे ही हैं।

मुनिवर तो एकत्व-विभक्त्व निज स्वरूप में लीन थे। निज ज्ञायक परमात्मा का प्रचुर स्वसंवेदन कर रहे थे। सर्व परिग्रह के परित्यागी, अपरिग्रही स्वभाव की रत्नत्रयमयी आराधना से शोभ रहे थे। वीतरागता की अभिवृद्धि रूप चार आराधनाओं में सतत प्रयत्न परायण थे। मुनीश्वर तो आत्मध्यान में लीन और सुभग मुनिराज के ध्यान में मग्न, वह यह भूल ही गया कि मैं कहाँ खड़ा हूँ। मेरी गायें कहाँ हैं ? यह सूर्य अस्त होने वाला है या नहीं ? वह तो चातक पक्षीवत धर्म की पिपासा लिये हुए खड़ा ही है और गायें तो अपने समय के अनुसार अकेलीं ही अपने घर को चलीं गईं।

शीतऋतु भी प्रचुरता से अपना सम्राज्य जमाये हुई थी, ठंडी के कारण मुनिराज के बदन पर वर्फ के कण जम गये थे। सुभग ने अपने कोमल हाथों से

मुनिराज के वदन का वर्फ हटा दिया और सोचने लगा- अरे ! जिस शीत में वृक्ष भी मुरझा गये, अनेक वस्त्रों सहित व्यक्ति भी ऐसी शीत को सहन नहीं कर पा रहे हैं, तब फिर इस भंयकर शीत में मुनिराज रात्रि व्यतीत कैसे करेंगे ? थोड़ी देर वह चिंतित ही खड़ा रहा, फिर उसे एक उपाय सूझा। वह तुरन्त ही दौड़ा दौड़ा अपने घर आया और लकड़ी की गठड़ी अपने सिर पर रखकर मुनिराज के समीप पहुँचा और मुनिराज से कुछ दूरी पर चारों तरफ आग जला दी जिससे वह महाराजश्री पर होने वाली शीत की बाधा का निवारण करने लगा, वह मुनिवर के पादपद्मों के समीप रात्रि भर बैठा-बैठा थोड़ी-थोड़ी लकड़ियाँ आग में ड़ालता गया, इस प्रकार अबोध बालक ने रात्रि भर मुनिराज को ठंड़ी से बचाया।

अतीन्द्रिय आनन्द में सराबोर मुनीश्वर तो निरन्तर अपने स्वरूप की गुप्त गुफा में बास करते हैं, उन्हें शीत-उष्ण आदि का कुछ ध्यान ही नहीं रहता। अतिशीघ्र केवलज्ञान लेने की जिनकी तैयारी वर्त रही हो, उन्हें फुरसत ही कहाँ है कि अपने उपयोग को बाहर में भ्रमायें। उनका उपयोग बाहर आया कि न आया और अन्दर चला जाता है। उन्हें बदन पर वर्फ की जमावट एवं अग्नि की उष्णता युक्त दोनों ही परिस्थितियों में साम्यभाव रहता है। साधु तो समता की मूर्ति, स्थितप्रज्ञ होते हैं। उनकी स्थिरता लख कर्मबंधन विदाई ले जाते हैं।

ज्ञेयों से निर्पेक्ष ज्ञानमय, अनुभव जिनका पावन,
शुद्धात्मा दर्शाती वाणी, प्रशममूर्ति मन भावन।
अहो जितेन्द्रिय गुरु अतीन्द्रिय ज्ञायक गुरु दर्शावें,
बैठ समीप संत चरणों में, पशु भी बैर भुलावें॥

अहो ! रंजनी ने विदाई ली और दिनकर ने अपना उष्णता युक्त प्रकाश बिखेरना प्रारम्भ किया। इधर मुनीश्वर का ध्यान भी भंग हो गया। वे देखते हैं कि यह बालक भक्ति के वशीभूत होकर रात भर से लगा हुआ है और अब धर्मामृत का पान करने की भावना से नतमस्तक हो बैठ गया है। उसे पात्र जानकर श्रीगुरु ने उसके कल्याणार्थ शिक्षा देते हुए कहा हे बालक ! तुम छोटा-बड़ा कोई भी काम किया करो तो काम करने के पहले यह सुखकारी मंत्र अवश्य जपा करो:- **"णमो अरहंताणं"** इस महामंत्र में श्री अरहंत भगवान को नमस्कार किया गया है। अरहंत हमारे भगवान हैं और भगवान का हर समय जाप करने वालों के पापों का नाश होता है, सच्चे सुख की प्राप्ति होती है और पुण्य का संचय भी होता है।

उस ग्वांल बालक ने श्रीगुरु द्वारा दिये गये सुखकारी महामंत्र को सहर्ष स्वीकार किया। उसका हृदय हर्ष से फूला नहीं समा रहा था, इस कारण उसके मुख से सहज ही गुरु के प्रति उपकार के भाव प्रगट होने लगे- हे गुरुवर ! हे दयानिधि ! आज आपने मुझे भव-भव के संचित पापों का नाश करने वाले मंत्र का दान देकर अनन्त दुःख संकटों से बचा लिया। हे परम उपकारी गुरुवर ! आपको नमस्कार हो।

इस महामंत्र पर सुभग को दृढ़ विश्वास हो इसलिये मुनिवर स्वयं भी **"णमों अरहंताणं"** मंत्र को बोलते हुए आकाश में गमन कर गये।

अपने गुरुवर को आकाश में ऊपर-ऊपर जाते देखकर वह बोल उठा- हे गुरुवर ! ठहरिये, ठहरिये, थोड़ी देर तो ठहरिये प्रभो। जब तक गुरुवर आकाश में दिखते रहे तब तक वह देखता ही रहा।

परन्तु जगत से निस्प्रहयोगी तो बालक की बात सुने बिना ही आकाश मार्ग से गमन कर गये।

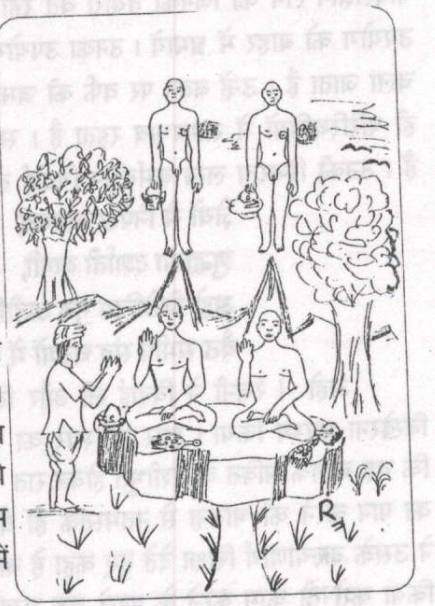

अपने गुरुवर को आकाश में जाते हुए देखकर सुभग को यह पक्का विश्वास हो गया कि इसी मंत्र के प्रभाव से गुरुवर आकाश में उड़ गये। महामंत्र का फल प्रत्यक्ष देखकर उसे बहुत ही आनन्द हुआ तथा मंत्र पर अटल विश्वास भी हो गया और वह सोचने लगा कि मैं भी गुरुवर समान इस मंत्र को भज के आकाश में उड़ सकूंगा। उसने इस मंत्र को बड़ी ही श्रद्धा के साथ सदा जपना प्रारम्भ कर दिया। मंत्र को जपते हुए ही वह घर को आया। उस दिन से वह प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में **"णमो अरहंताणं"** बोलने लगा।

सेठ वृषभदास ने देखा कि यह बालक कोई भी कार्य करता है तो प्रथम **"णमो अरहंताणं"** बोलता है। तब सुभग से बोले - क्यों बेटे ! तुम यह मंत्र किसलिये बोलते हो ? इस मंत्र को तुमने कहाँ से प्राप्त किया ?

तब सुभग ने अपने गुरुवर को ठंड़ी से बचाने का एवं उनके द्वारा दिये गये महामंत्र की बात बड़े ही प्रमोद पूर्वक आदि से अंत तक कह सुनाई।

ग्वाल बालक की बात सुनकर सेठजी बहुत आनन्दित हुए। वे सोचने लगे अरे ! हमने तो चारणऋद्धिवंत संतों की बात शास्त्रों में पढ़ी है, गुरुमुख से सुनी ही है, परन्तु उनके साक्षात् दर्शन का सौभाग्य हमें नहीं मिला, यह बालक कितना भाग्यशाली है कि इसने चारणऋद्धि से सुशोभित गुरुओं का दर्शन पाया और साक्षात् अमृतमयी वाणी को सुना। अवश्य ही यह कोई होनहार बालक है। उस बालक को धन्यवाद देते हुए सेठजी बोले- हे पुत्र ! यह महामंत्र इसलोक और परलोक दोनों में महा सुखदाई है। क्योंकि जैसा स्वरूप अरहंत भगवान का है, वैसा ही स्वरूप तेरा भी है और अरहंत भगवान को जानकर जो अपनी आत्मा का ध्यान करता है उसका जीवन भी धन्य बन जाता है। फिर उसे कोई भी दुःख-संकट नहीं सताते। इस मंत्र को जपने वाले महापुरुष होते हैं, उनका संसार भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार उसकी प्रशंसा करने के बाद उसे प्रेम पूर्वक भोजन कराया, उसके मनपसंद वस्त्रादि भी आनन्द पूर्वक दिये।

इससे यह पता चलता है कि यह धर्म कितना महान है। यह किसी भी प्राणी के अन्दर अवतरित हो, वह सदा पूज्यनीय हो जाता है। धर्म ही तीन लोक और तीन काल में जगत का सच्चा बंधु है, धर्म पंच परावर्तन रूप संसार के दुःखों से निकालकर बाधारहित परम सुख को प्राप्त कराता है। यही कारण है कि धर्म के धारक धर्मात्मा सभी के द्वारा सम्मान एवं पूजा प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं। ऐसे धर्मात्माओं के चरणों में धन-वैभव, राज्य-सम्पदा, ऐश्वर्य, स्वर्ग इत्यादि पुण्य लोटा करें तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

सुभग का जीवन धार्मिक भावनाओं से सराबोर देखकर सेठ श्री वृषभदास ने सम्पूर्ण नमस्कार मंत्र का उच्चारण किया और फिर उसका अर्थ भी बतलाया, वह इस प्रकार है- **"णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोएसव्वसाहूणं।"** इस अनादि निधन महामंत्र में श्री अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, एवं साधु इन पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार किया गया है। अपने आत्महित के इच्छुक सदा ही इसी का स्मरण किया करते हैं।

सेठजी के मुख से सम्पूर्ण मंत्र को अर्थ सहित श्रवण करके सुभग बहुत ही प्रसन्न हुआ।

प्रतिदिन के अनुसार सुभग आज भी अपनी गायों को लेकर जंगल चला गया, गायें अपनी इच्छानुसार जंगल में घूम-घूम कर घांस चर रहीं थीं और सुभग एक वृक्ष के नीचे बैठा-बैठा गुरुमंत्र को भज रहा था इतने में ही खूब जोर की वर्षा होने लगी, जिससे गायों ने अपने घर की राह पकड़ ली, रास्ते में गंगा नदी पड़ी उसमें अतिवर्षा के कारण पूर आ गया था, गायें तो उस पूर में से ही नदी पार कर गईं। इतने में ही किसी एक ग्वाले मित्र ने सुभग से कहा- अरे ! तूं यहाँ ही बैठा है, तेरी गायें तो गंगा पार कर उस पार चलीं गईं।

सुभग शीघ्र ही उठा, वह चारों ओर देखता है परन्तु गायें कहीं भी दिखाई नहीं दीं तो वह भी शीघ्रता से घर की ओर चल पड़ा, रास्ते में वह देखता है कि नदी में पूर आया हुआ है, नदी पार कैसे की जाय ?

वह कुछ समय तक तो विचार करता रहा, उसने सोचा रात्रि हो रही है और गायें अकेली ही घर पहुँची देखकर सेठजी मेरी बहुत चिन्ता कर रहे होंगे, इसलिये किसी भी उपाय से शीघ्र चला जाये। उसका हृदय बोल रहा था कि मेरे पास सब दुःख-संकट हरण मंत्र है इस कारण मुझ पर कोई विपत्ति आने वाली ही नहीं हैं, इस भावना के वशीभूत होकर वह एक वृक्ष पर चढ़ गया और **"णमो अरहंताणं"** बोलते हुए उसने वृक्ष पर से नदी के उस पार पहुँचने के लिये छलांग लगा दी, फल यह हुआ कि उस नदी में एक लकड़ी का ठूठ खड़ा हुआ था, उस पर वह गिर गया और वह ठूठ उसके पेट में घुस जाने से उसकी वहीं मृत्यु हो गई। मरते हुए उसने यह निदान किया कि इस महामंत्र के फल में मैं इस सेठ का ही पुत्र होंऊ।

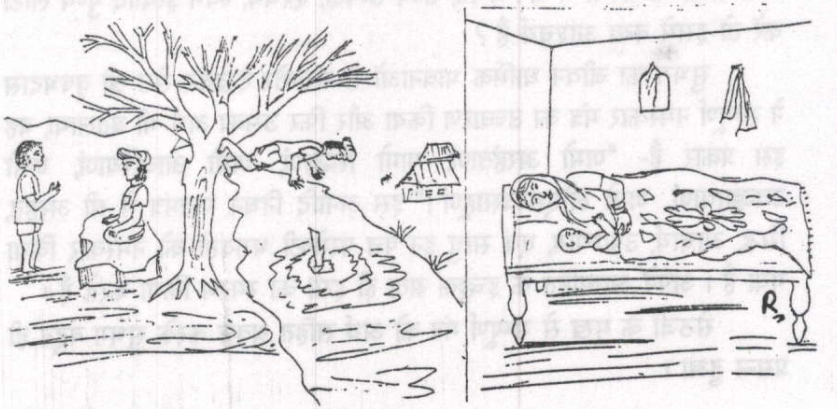

उस देह को त्याग कर निदान के फलस्वरूप तुम यहाँ सेठ के पुत्र हुए हो और गुरुमंत्र एवं गुरूसेवा के फलस्वरूप तुम्हें यह कामदेव समान सुन्दर तन, अपूर्व धैर्य, सन्मान, प्रतिष्ठा, यश-कीर्ति एवं सभी श्रेष्ठ गुण प्राप्त हुए हैं।

सुभग अभी अबोध बालक ही था वह यह कुछ नहीं जानता था कि पुण्योदय होगा और आयु शेष होगी तो भगवान के नाम का जाप भी निमित्त कहलायेगा। इससे तो मात्र इतना ही समझना चाहिए कि उस बालक की होनहार अच्छी थी तो उसको हितकारी निमित्त मिल गये और उसके अन्दर में भी गुरुवर के प्रति भक्ति जागृत हो गई। यह प्रत्यक्ष ही है कि ज्ञानी-अज्ञानी कोई भी हो, अंत समय में सब भगवान का नाम ही लेते हैं।

हे सुदर्शन ! इन अरहंत भगवान के नाम स्मरण रूप महामंत्र के प्रताप से ही अरहंत पद का सर्वोत्तम ऐश्वर्य प्राप्त होता है। इस अरहंत दशा का मूल बीजभूत सम्यग्दर्शन इसी अरहंत शब्द के वाच्य स्वरूप निजात्मा के सम्यक् श्रद्धान से ही प्राप्त होता है और इसी बीज में से ही रत्नत्रय का वृक्ष एवं अनन्त चतुष्टय के फल प्रगट होते हैं तथा तीन लोक में सर्वोत्कृष्ट वैभव स्वरूप समवशरण लक्ष्मी की प्राप्ति भी इसी मंत्रराज की देन है। धर्म-वृक्ष की शीतल छाया में ही इन्द्र-अहमिन्द्र, चक्रवर्ती, बलभद्र आदि उच्चपद आकर वास करते हैं। धर्म की पावन सौरभ को दुष्ट राजा, भूत-पिशाच, शाकिनी-ड़ाकिनी वगैरह बरदाश्त करने में असमर्थ होने से अपने आप बिदा ले जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य का प्रचंड़ प्रताप एवं प्रकाश की बात तो दूर रहो मगर सूर्य की एक किरण भी सम्पूर्ण अंधकार का नाश करने वाली होती है। उसी प्रकार इस महामंत्र का नाम उच्चारण मात्र ही पापों का प्राणांतकारक होता है। अग्नि के सम्पर्क में आने वाला स्वर्ण क्या कभी अशुद्ध रह सकता है ? कभी नहीं। क्या कभी धर्म का शत्रु भी होता है ? नहीं, कभी नहीं। क्या कभी त्रिजगवासी के भी कोई अवश रहता है ? नहीं नाथ, नहीं।

अहो धर्म ! तेरी साहजिक शुद्धता एवं सर्वोत्कृष्टता, जब तेरा कोई दुश्मन ही नहीं, तब भला यह तलवार घातक स्वभाव को कैसे धारण कर सकती है ? नहीं कर सकती। यही कारण है कि उसने पुष्पाहार का स्वांग धारण कर लिया। जब धर्म कभी अपराधी नहीं होता तब दण्ड स्वभाव को धारण करने वाली शूली भी उसका सामना कैसे कर सकती है ? नहीं कर सकती। इसीसे ही उसने धर्मात्माओं को विराजमान होने के लिये सिंहासन का रूप धारण कर लिया। तो फिर विपत्ति भी संपत्ति रूप, दुःख भी सुख रूप, शत्रु भी मित्र रूप परिणमित हो जायें तो इसमें क्या आश्चर्य ?

अहो ! जिसने शाश्वत अमरता को वरण किया उसने ही मुक्ति पाई है। जिसने अवांछकता को निहारा है वही सादि अनन्त काल के लिये निर्वांछक हुआ है। जिसने सहज अकृत्रिम भगवान की उपासना की है वही त्रिलोक्य का उपास्य देव हुआ है। जिसने मंत्र बनकर तंत्र की उपासना की है उसकी ही वाणी ने यंत्र का रूप धारण किया है। इस महामंत्र की परमार्थ उपासना का फल मोक्ष अर्थात् अशरीरीदशा है और व्यवहार उपासना का फल लोभियों को ललचा देने वाला धन-वैभव का भंड़ार स्वरूप स्वर्ग है। हे सुदर्शन ! इसका पूरा वर्णन तो अरहंत भट्टारक परम देवाधिदेव ही कर सकते हैं। अल्पज्ञ नहीं।

सर्व सिद्धियों के दाता एवं सर्व विपत्तियों के नाशक इस मंत्र का सत्पुरुष सदा ध्यान करते हैं। इस मंत्र के वाच्यस्वरूप पंच परमेष्ठी जगत में महान हैं। इसे महापुरुष ही महानता के हेतु धारण करते हैं। भूतकाल में जो मोक्ष गये हैं, वर्तमान में जो मोक्ष जा रहे हैं और भावीकाल में जो मोक्ष जायेंगे यह सर्व महात्म्य इस मंत्रराज का ही है। इसकी महिमा अगम अथाह है।

सर्व मंत्रों में महामंत्र णमोकार मंत्र की महिमा सुनकर सुदर्शन, राजा एवं प्रजागण बहुत ही आनन्दित हुए। कितने ही धर्म रसिक जीवों ने अपनी-अपनी शक्तानुसार प्रतिदिन इसे जपने की प्रतिज्ञा ली, अत: अनेक जीव धर्म का स्वरूप जानने के लिये प्रयत्नरत हो गये।

हे सुदर्शन ! केरंगी नाम की जो तेरी पूर्व जन्म की भार्या थी वह भी मरकर बनारस में भैंस हुई थी। उस भव में भूख-प्यास, ताड़न-मारण, शर्दी-गर्मी के वचनातीत दुख सहन किये। कुछ पुण्योदय से उसने तिर्यंच गति से निकल चम्पानगरी के सांवल नाम के धोबी उसकी यशोमती नामक पत्नी के गर्भ से वत्सिनि नामक पुत्री के रूप में जन्म लिया। पुण्ययोग से उसका भाग्य चमक उठा, उसे एक दिन मोक्ष की साधिकायें ऐसी आर्यिका माताओं के संघ का दर्शन हुआ, उसने बड़े ही भक्तिभाव से नम्रतापूर्वक उन्हें नमन किया, पश्चात् अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की।

आर्यिका संघ की प्रमुख आर्यिका ने उस बालिका की दयनीय दशा को देखकर कुछ शांतिदायक वचन कहे-हे बेटी ! तेरे महापाप का उदय था जो ऐसे हीन कुल में जन्म लिया जहाँ सदा मद्य-मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन किया जाता है, जो कि संसार में भटका-भटका कर अनन्त दुखों को देने वाले हैं। इस कारण तुम आज तक धर्म को प्राप्त नहीं कर पाई, आज तेरा महापुण्योदय जागा है

इसलिए तुम इस महामंत्र **"णमो अरहंताणं"** का निरन्तर जाप किया करो, इससे तेरे सब दुख, संकट, दरिद्रता एवं नीचकुल आदि का नाश होकर सच्चे सुख के निमित्तभूत वीतरागी देव, शास्त्र, गुरुओं का समागम मिलेगा, जहाँ हमेशा सदाचारी जीवन जिया जाता है ऐसा उच्चकुल प्राप्त होगा, पुण्यात्माओं का सत्संग प्राप्त होगा।

इतना सुनते ही उस होनहार बालिका ने नतमस्तक होकर आर्यिका माताजी से महामंत्र को तो शिरोधार्य किया ही परन्तु उसके उपरांत कुछ और व्रत आदि को प्रदानकर मुझ पर कृपा कीजिए, इस प्रकार प्रार्थना करने लगी।

उसकी पात्रता देखकर आर्यिकाजी ने उसे पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और चार शिक्षाव्रत इस प्रकार. बारह अणुव्रतों को प्रदान किया, रात्रिभोजन का त्याग, व्रत-उपवास आदि नियमों को दृढ़तापूर्वक पालना, यथायोग्य दान देना एवं पंच नमस्कार मंत्र का प्रतिदिन जाप करना और जैनधर्म पर अटल विश्वास रखना यही तुझे मोक्षमार्ग को प्राप्त करा सकेंगे, संसार से पार होने का यही उपाय है। इस प्रकार का उपदेश दिया।

वह भव्य आत्मा आर्यिकाजी द्वारा दिये गये व्रत इत्यादि को अंगीकार करके उन्हीं के साथ ही रहने लगी। हे सुदर्शन ! पवित्र आर्यिका संघ में रहकर जो उसने आचार-विचारों की शुद्धि प्राप्त की और जैनधर्म पर दृढ़ विश्वास और व्रत पालन की भावनाओं से जो पुण्य का संचय किया था उसके फलस्वरूप ही वह कन्या वहाँ से मरकर तेरी प्राणों से प्यारी मनोरमा नाम की पत्नी हुई है, जो कि गुणों की निधान एवं सौन्दर्य की मूर्ति है। यही कारण है कि आप दोनों में अति प्रेम है। हे सुदर्शन ! मैत्री भाव, शत्रुता और प्रीतिभाव आदि जितनी भी बातें हैं ये सभी पूर्वजन्म के संस्कारवश ही हुआ करतीं हैं। यही कारण है कि विवेकीजनों को इसमें आश्चर्य नहीं लगता ।

इसप्रकार वीतरागी संत श्री विमलवाहन मुनिराज के मुखारबिंद से सुदर्शन ने अपनी ही पुण्य-पाप की कमाई से उपार्जित संकटमयी पूर्व-जन्मांतरों की कथा सुनी, जिससे वे संसारवर्धक दुखों के प्रति भयभीत हो उठे और शाश्वतसुख दाता एवं संसार-देह-भोगों से उदासीनता पैदा करने वाली जिनदीक्षा अंगीकार करने की उन्हें तीव्र भावना जाग उठी।

धन्य है धर्म तेरा बोध ! एक अबोध ग्वाल-बालक ने तुझे भक्तिभावपूर्वक स्वीकारा तो उस धर्मबीज ने आज मोक्ष का धर्मवृक्ष प्रदान किया। फल यह हुआ कि वह ग्वाल बालक वहाँ से आकर सुदर्शन श्रेष्ठी के रूप में अवतरा और यह

भी उसका अन्तिम जन्म ही है। ऐसा गुणवान, धैर्यवान, शीलवान, चरमशरीरी अर्थात् इसी भव से मोक्ष प्राप्त करने वाला हुआ, और वह मोक्ष का कारणभूत निश्चय रत्नत्रय सहित व्यवहार रत्नत्रय को प्रगट कर यथाजातरूपधर द्रव्य-भावलिंग को धारण करके मोक्ष को बरेगा। इससे भव्यों को यह शिक्षा ग्रहण करना चाहिए कि इस पंच नमस्कार मंत्र के पद में आसीन जो भव्य आत्मायें हैं वे सब इस आत्मा की ही अवस्थायें हैं-

अरहंत सिद्धाचार्य पाठक साधु हैं परमेष्ठि पण।
सब आत्मा की अवस्थायें आत्मा ही है शरण॥

इन पांच अवस्थावान ऐसा निजात्मा का श्रद्धान, ज्ञान एवं आचरण ही मोक्ष का दाता है। ऐसा जानकर सभी को अपनी आत्मा की आराधना करना योग्य है।

योगीराज विमलवाहन गुरुवर से अपने एवं मनोरमा के भवान्तर श्रवणकर, भवसंतति को सादि अनन्त काल के लिये दग्ध कर अपुनर्भव के लिए कमर कसके दोनों ही तैयार हो गये।

वे विचारने लगे-वास्तव में परमार्थ सुख से शून्य इस संसार में दुखों का ही साम्राज्य है अर्थात् संसार के अधिकतर प्राणी दुखों के सागर में ही डूबे हुए हैं। जब संसार, क्लेशों से ही रचा हुआ है, तब फिर उसमें सुख की परछाईं भी कहाँ से दिखेगी? नहीं, दिख सकती। तब फिर सच्चे सुख के इच्छुक भला इसे स्नेहपूर्ण बुद्धि से कैसे अपना सकते हैं ? नहीं अपना सकते। अनादि काल से प्राणी धर्म रहित हो पापों को करता हुआ संसार की सुदृढ़ बेडियों से जकड़ा हुआ है, उन बेड़ियों का मूल विपरीत मान्यता अर्थात् मिथ्यात्व ही है, जिसके कारण यह प्राणी मोक्ष एवं मोक्षमार्ग से अति ही दूर है। इस विपरीत अभिप्राय के अनन्त जीवों की अपेक्षा अनन्त प्रकार हैं, परन्तु जिनागम में उन अनन्त को मुख्य रूप से पांच प्रकार में समेट लिया गया है, जिसके नाम इसप्रकार हैं-एकांतमिथ्यात्व, विनयमिथ्यात्व, विपरीतमिथ्यात्व, संशयमिथ्यात्व और अज्ञान मिथ्यात्व। ये पांचों ही मिथ्यात्व महा निंदनीय हैं, हलाहल जहर से भी अनन्त गुणे जहरीले हैं, इनके वश होकर ये प्राणी अनन्तकाल से संसार के अनन्त दुख भोग रहे हैं। इसलिये मोक्ष के इच्छुक जीवों को देव, शास्त्र, गुरु का, सात तत्त्वों का, स्व-पर का एवं हितकारी-अहितकारी भावों का सच्चा श्रद्धान रूप जो परम पवित्र सम्यग्दर्शन है उसे प्राप्त कर मिथ्यात्व को जड़मूल से उखाड़ फेंक देना ही श्रेष्ठ है।

मिथ्यात्व शत्रु के अभाव हो जाने के बाद अविरति, प्रमाद, कषाय और योग भी संसार के कारण हैं, इनका अभाव होना भी मुक्ति के लिये आवश्यक है। पांच इन्द्रियाँ एवं मन इन छह के द्वारा पांच स्थावर तथा त्रस इसप्रकार छह काय जीवों की हिंसा करना ये बारह प्रकार की अविरति है, ये रागादि विकारी भाव आत्मस्वभाव से विपरीत होने से संसार के कारण स्वरूप हैं। इसलिये मुझे मन रूपी बन्दर को पांच इन्द्रिय रूपी बाग में भ्रमने से रोक कर अपने निजात्मा के शाश्वत नंदन वन में विचरण करना चाहिए, क्योंकि इन्द्रिय विषयों का बाग अति विस्तार सहित होने से मन पर अंकुश न लगाया जाये तो यह भव भ्रमण कभी भी शांत होने वाला नहीं है। इसलिये ही ज्ञानी जनों ने इसके अभाव का एकमात्र अचूक उपाय बताया है कि द्रव्य-इन्द्रिय भावेन्द्रिय एवं उनके विषयों को अतीन्द्रिय महा पदार्थ निजात्मा का आश्रय लेकर जीत लेना ही उचित है।

संसारी प्राणियों को पंचेन्द्रियों के विषय बहुत ही अच्छे लगते हैं, इस कारण उन्हीं पर निरन्तर समर्पित रहता है। जबकि इन्द्रिय विषय एवं उनकी लालसा काले नाग के समान डसने वाले हैं, जिसके डसने पर संसार में पतन अवश्यंभावी है। जिन अशुचिमय अपवित्र स्थानों का ज्ञानीजन एक समय के लिये भी भोगोपभोग नहीं करते उनका मुझे भी शीघ्र त्याग करना ही श्रेयस्कर होगा, क्योंकि विषय रूपी अग्नि का इतना विशाल उदर (पेट) है कि ज्यों ज्यों इनकी पूर्ति हेतु संयोगों की प्राप्ति होती जाती है त्यों त्यों इनकी भूख और बढ़ती ही जाती है। इन भोगों को रात-दिन भोगने पर भी कभी तृप्ति होने वाली नहीं है। "तृष्णा नागन ज्यों ज्यों डंके लहर जहर की आवे"।

दूसरी बात-"यदि ये विषय भोग धर्म में कुछ सहायक होते तो इनका भोग करना कुछ सार्थक भी होता परन्तु ये तो धर्म के विध्वंशक हैं, नरक-निगोद, गति में ले जाने वाले है। लोकनिंद्य हैं इसलिये इन क्रोध, मान, माया, लोभ हास्यादि भावों का उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि भावों की खड्ग द्वारा नाश करना ही योग्य है। इस संसार में शरीर धारण करना तभी सफल हो सकता है जब इस शरीर में अशरीरी आत्मा को देख लिया जाय। इन पंचेन्द्रियों से रहित अनेन्द्रिय-निजस्वरूप का अनुभव कर लिया जाय। क्योंकि जो भव और भव के भावों से रहित निजस्वभाव को भजते हैं वे भव रहित मोक्ष पद को वरते हैं, प्राप्त करते हैं।

जिस प्रकार पुराण पुरुषों ने व्रतादि धारण करके यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति द्वारा छह काय जीवों की रक्षा की थी, उन्हें अभयदान दिया था, उनकी अहिंसा पालकर अपने जीवन में धर्म का मूल ऐसी अहिंसा को अपनाकर संसार का उच्छेद किया था। उसी प्रकार संसार उच्छेदक अहिंसा धर्म को मुझे भी शीघ्र अपनाना योग्य है।

चार प्रकार की विकथा एवं पन्द्रह प्रकार का प्रमाद- ये सभी पापबंध के कारण हैं। प्रमादी जीवों को इनके द्वारा कर्मों का आस्रव सदा होता रहता है जो कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि का नाशक और संसार वर्धक है। इनका फल प्रत्येक संसारी प्राणी प्रत्यक्ष ही भोग रहा है। प्रमादी सदा धर्म-कर्म से भ्रष्ट होता है, ज्ञान-वैराग्य से कोषों दूर रहता है। लौकिक कार्यों में भी उसे सदा असफलता ही हाथ लगती है, अपयश का भागी होता है, विवेक शून्य हो पशुवत प्रवृत्तिवाला होता है, दरिद्रता सदा उसे घेरे रहती है और संसार रूपी खेत को जोतकर सदा संसार परिभ्रमण की पैदास बढ़ाता जाता है। इसलिये आत्महित के इच्छुकों को सदा ज्ञान-ध्यान, संयम तथा वैराग्य में सावधान होकर सदा प्रमाद पर विजय प्राप्त करना चाहिए।

इसी प्रकारयोग भी कर्मबंध का कारण है।यह मन-वचन एवं काय के भेदसे तीन प्रकार का है।इसके भी पन्द्रह भेद होते हैं- मन-वच-काय रूप योगों का निमित्त पाकर आत्मप्रदेशों में कंपन होता है। इन योगों की चंचलता से प्रकृति और प्रदेशबंध होता है और मिथ्यात्व तथा कषायों से स्थिति और अनुभागबंध होता है। इसलिये इनसे यह सिद्ध होता है कि चाहे द्रव्य योग हो अथवा भावयोग हो दोनों कर्मबंध के ही कारण हैं, फिर चाहे वह शुभकर्म बंध हो या अशुभकर्म बंध हो, दोनों ही जीव को संसार में रुलाते हैं, मुक्ति की प्राप्ति में दोनों ही बाधक हैं, निज स्वरूप आराधना से दोनों ही पतित करते हैं, इसलिये संसार के ही हेतु हैं। भले ही जगत में सत्य वचन को अच्छा कहा जाता है और सत्यभाषी लौकिक पूजा, प्रतिष्ठा को भी प्राप्त होता है और बोलना ही पड़े तो सत्य वचन ही बोलना चाहिए परन्तु यह धर्म की कोटि में नहीं आ सकता, क्योंकि सत्य बोलना ही धर्म होता तो ज्ञानी धर्मात्मा, साधु, संत, मौनव्रत क्यों अंगीकार करते ?और नहीं बोलना ही धर्म होता तो जिन्हें वचन योग ही नहीं ऐसे एकेन्द्रिय जीवों को धर्मात्मा मानना पड़ेगा जो कि उचित नहीं है।ये मन-वचन-काय तीनों ही पुद्गल द्रव्य की रचनायें हैं और पुद्गल द्रव्य की क्रिया में धर्म-अधर्म नहीं होता।यही कारण है कि मोक्ष के साधक जीव

अपने उपयोग को परद्रव्य और परद्रव्य के भावों से समेटकर अपने में लगा लेते हैं। यही योग निरोध का कारण है।

इस प्रकार एकांत, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञान के भेद से पांच भेद रूप मिथ्यात्व, पांच इन्द्रिय और मन, इन छह के द्वारा छहकाय जीवों की अरक्षा ये बारह प्रकार की अविरति, सत्य, असत्य, उभय और अनुभय के भेद से चार-चार प्रकार का मनयोग और वचनयोग तथा औदारिक-औदारिकमिश्र, आहारक-आहारकमिश्र, वैक्रियक-वैक्रियकमिश्र और कार्माणकाय योग के भेद से सात प्रकार का काययोग कुल पन्द्रह प्रकार का योग और क्रोध, मान, माया और लोभ के भेद से अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन के भेद से सोलह प्रकार की कषायें तथा हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद इस तरह नोकषाय ये कुल सत्तावन आस्रव के कारण हैं। इन्हीं से संसार की उत्पत्ति, वृद्धि एवं फलानुगम होता है। और ज्ञान-ध्यान-व्रत-शील एवं वैराग्य के द्वारा ही इन पर विजय प्राप्त करके मुनिदशा प्राप्त की जा सकती है। इसप्रकार सेठ सुदर्शनजी ने ५७ प्रकार के आस्रव के कारणों का स्वरूप जानकर उनके नाश का उपाय भी भली भांति जान लिया।

इन विचारों से सुदर्शनजी के वैराग्य में अभिवृद्धि हुई। अब वे धन-धान्य, दासी-दास, स्त्री-पुत्र आदि दस प्रकार के बहिरंग परिग्रह और मिथ्यात्व, चार कषायें तथा नव नौ कषायों रूप चौदह प्रकार का अंतरंग परिग्रह इस प्रकार चौबीस प्रकार के परिग्रहों का त्याग करके, निःशल्य होकर मुनिपद अंगीकार करने को तैयार होकर पूज्य गुरुवर श्री विमलवाहनजी मुनिराज के समक्ष पहुँचे।

पूज्य गुरुवर को नमस्कार करके अंजुलि जोड़कर प्रार्थना करने लगे-हे गुरुवर! इस चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करते हुए मैंने अनन्त दुख उठाये हैं। सारा संसार ज्ञान, वैराग्य एवं शील ही का लुटेरा ही है, इनसे मेरा चित्त अति ही थक चुका है, इसलिये ज्ञान-वैराग्य की जननी, आत्मिक अतीन्द्रिय आनन्द प्रदायनी ऐसी जैनेश्वरी दीक्षा प्रदानकर मुझे अनुगृहीत कीजिए।

पूज्य श्री विमलवाहन योगीराज ने अपनी कुशल प्रज्ञा से सुदर्शन जी की पात्रता जान ली। संसार के क्लेशों से थके हुए चित्त वाले सुदर्शन को आगम के अनुकूल समस्त परिग्रहों का त्याग कराया, तेरह प्रकार का शुद्ध चारित्र एवं अट्ठाईस मूल गुणों को प्रदान कर, निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय से मंडित किया। तभी वैरागी

सुदर्शनजी ने अपने ही हाथों से केशों का लोंच किया एवं बारह भावनाओं को भाते हुए बाह्य में परम दिगम्बर दशा को एवं अंतरंग में शुद्धोपयोग रूप मुनिधर्म को अंगीकार कर मोक्ष के साधक साधु परमेष्ठी पद में शोभने लगे।

अहो ! सौम्यमुद्रावंत, साम्यभाव के धारी पूज्य श्री सुदर्शन मुनिराज ने, जैसे ध्यान के बल से कर्म के बंधन तड़-तड़ टूट जाते हैं, उसी प्रकार वैराग्य के बल से वस्त्राभूषण आदि परिग्रह को उतारकर सादि अनन्त काल के लिए दूर फेंक दिये। धन्य मुनीश्वर अब तो आप निराभूषण, विगतदूषण, परम आसन, मधुर भाषणवंत हो गये। शिल, शैल, शिखर ही आपका बिछोना (बिस्तर) है, आकाश ही ओढ़ना है, दिशायें ही अंबर हैं, सवंर-निर्जरा ही आपका तकिया है। अतीन्द्रिय आनन्द का प्रत्तुर स्वसंवेदनमयी ही आपका जीवन हो गया है।

मोक्ष साधिका परम तपस्वर्या जो कि सौ इन्द्रों से वंदनीय है, त्रिजगत पूज्य है। सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणी पूज्य श्री १०८ सुदर्शन स्वामी मुनिराज अब केवली परमात्मा के ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पुत्र हो निजानंद की गटागट घूटें पीने लगे। आ हा हा ! अब तो शाश्वतपुरी की जोरदार तैयारीयाँ होने लगीं। क्षण क्षण में सिद्ध प्रभू से बातें करने लगे। आपकी ज्ञानानंदमयी परिणति प्रति-समय अप्रतिबद्ध विहारी हो अपने धाम के लिये अग्रसर होने लगी। धन्य प्रभो ! धन्य

आपकी स्थिरता, धन्य आपकी विभूता, धन्य आपकी प्रभूता, आपकी जय हो। जय हो। पंचम अंतःकृत केवली की जय हो, चरमशरीरी नाथ की जय हो।

आप तो गृहस्थदशा में ही शील-शिरोमणी थे, अब तो गुरुवर १८ हजार शीलगुणों को एवं ८४ लाख उत्तरगुणों को प्राप्त करके शील के ईश्वर ऐसे शैलेशीनाथ बनने के लिये प्रचंड पौरुष को अपनाने लगे।

पूज्य मुनिवर श्री सुदर्शन स्वामी के उग्र पुरुषार्थ को देखते हुए राजा के हृदय में भी वैराग्य छा गया। तब धात्रीवाहन राजा भी संसार, देह, भोगों से विरक्त हो गये, उनने अपने पुत्र को राजतिलक कर एवं सुदर्शनजी के पुत्र सुकान्तजी को राजसेठ का पदाधिकारी बनाकर बाह्याभ्यन्तर चौबीस प्रकार के परिग्रहों को त्याग कर सुदर्शनजी के साथ ही पूज्य विमलवाहन गुरुवर से संसार परिभ्रमण नाशक एवं समस्त पापक्षयकारी जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर ली। पूज्य श्री धात्रीवाहन मुनिराज भी मोक्षसुख के लिये शुद्धोपयोग में विचरण करने लगे।

अपने अपने पतिराज को योग धारण करते हुए देखकर मनोरमा का एवं राजरानियों का हृदय भी संसार, देह, भोगों से विरक्त हो गया। उनका मन भी संसार से भयभीत हो उठा, उन्हें भी संसार में फंसे रहना अब एक समय के लिये भी नहीं सुहा रहा, वे भी मुक्तिमार्ग द्वारा सादि अनन्त काल के लिये शाश्वत सुख प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषी थीं, इसलिये उन सभी ने भी पूज्य आर्यिका संघ में जाकर पूज्य आर्यिका संघ को एवं गणीआर्यिकाजी को नमन करके आर्यिका दीक्षा का दान मांगा। हे मातेश्वरी ! मुझे अतीन्द्रिय आनन्द दायक जिनदीक्षा देकर अनुगृहीत कीजिए। मनोरमा एवं राजरानियों का हृदय अत्यंत हर्षायमान है, भवबंधन से छूटने में भला किसे हर्ष नहीं होगा ? सभी को होगा।

पूज्य गणी आर्यिकाजी ने मनोरमा आदि को आगम की विधि अनुसार जैनेश्वरी आर्यिका दीक्षा दी। मात्र सोलह हाथ की सफेद साड़ी एवं एक गज का और वस्त्र रखकर शेष सभी परिग्रह का त्याग कर दिया। उसके बाद सभी ने अपने ही हाथों से अपने केशलोंच किये और दो कषाय चौकड़ी के अभावपूर्वक शुद्धोपयोग रूप आर्यिका पद में शोभने लगीं। सभी नवीन आर्यिकायें पूज्य गणी आर्यिकाजी के निकट ध्यान-अध्ययनरत हो, उग्र, उग्र तप तपने लगीं। अपने संयम की निर्दोषता हेतु धर्म साधन में लीन हो वन, उपवन, नगर-ग्राम आदि में विहार करने लगीं।

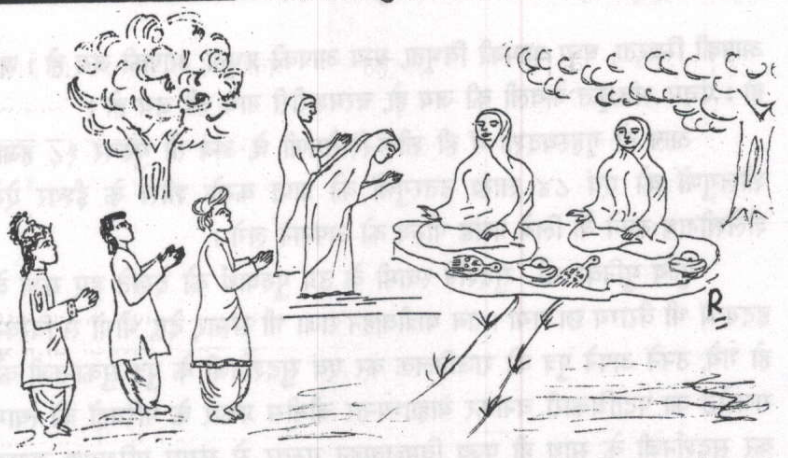

श्री विमलवाहन मुनिपुगंव भी चार हाथ भूमि को देखते हुए इर्या समिति पूर्वक संयम की पवित्रता हेतु अनेक वन-उपवन नगर ग्रामों में विहार करने लगे। श्री सुदर्शन मुनिराज अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी तो थे ही, उनने निज स्वभाव की उग्र आराधना द्वारा काया और कषायों पर विजय प्राप्त कर ली। ध्यान-ज्ञान में लवलीन हो घोरातिघोर तपस्या करने लगे। वे गुरु वचन रूपी जहाज पर आरूढ़ हो समस्त व्यापार से मुक्त हो चतुर्विध आराधना में सदा रक्त, निग्रन्थ और निर्मोह साधु हो विचरने लगे अर्थात् परमसंयमी महापुरुष होने से त्रिकाल निरावरण, निरंजन, परम पंचमभाव की भावना में परिणमित होने के कारण ही समस्त बाह्य व्यापार से विमुक्त हो गये। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और परम तप नाम की चतुर्विध आराधना में सदा अनुरक्त, बाह्य अभ्यांतर समस्त परिग्रह रहित होने के कारण निग्रन्थ तथा सदा निरंजन निज कारण समयसार के स्वरूप के सम्यक्श्रद्धान, सम्यक्परिज्ञान और सम्यक्आचरण से प्रतिपक्ष ऐसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का अभाव होने से निर्मोह हो मुक्तिपति बन गये।

मुनिदशा में होने वाली सहज रूप प्रवृत्ति को चरणानुयोग की पद्धति में २८ मूलगुण कहे जाते हैं वे इस प्रकार हैं- पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रिय निरोध, षट् आवश्यक और सात शेष गुण ये २८ मूलगुण और तेरह प्रकार का चारित्र को परम आचार शास्त्र के अनुकूल आचरतें हैं अर्थात् चरण करण प्रधान हैं। स्वाध्याय काल का अवलोकन करते हुए स्वाध्याय करते हैं। तीन संध्याओं के समय (प्रातः, मध्यान्ह, सांयकाल) भगवान अरहंत परमेश्वर की लाखों स्तुति मुखकमल से बोलते

हैं। तीनों समय के नियमों में तत्पर रहते हैं, इस प्रकार अहर्निश (दिन-रात मिलकर) ग्यारह क्रियाओं में तत्पर रहते हैं। पाक्षिक, मासिक, चातुर्मासिक तथा सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करने से उत्पन्न हुए संतोष से जिनका धर्मशरीर रोमांच से छा जाता है, इस प्रकार चारित्र भर (चारित्र की अतिशयता) परम तपोधन श्री सुदर्शन मुनीश्वर बारह प्रकार के तपों को तपने लगे, वे इस प्रकार हैं-

अनशनतप - तपस्या के अर्थ छह-छह मास का उपवास, तीन माह, दो माह, एक माह और कभी कभी एक एक पक्ष का उपवास पूर्वक आत्म साधना करते हैं, जिससे अर्थात् जिस तप में लीन रहने से मुनिवर का कर्मवन दग्ध हो जाया करता है ऐसे अनशन स्वभावी आत्मा में लीन रहते हैं।

अवमोदर्यतप - तपार्थ श्री सुदर्शन मुनीश्वर परणा के दिन भी अल्प-आहारी बनकर ही रहते एवं परिणति को अंकुशित करने हेतु क्रमशः थोड़ा-थोड़ा आहार कम करते जाते हैं, जिससे निर्विघ्न संयम की साधना के बल से आलस्य का अभाव करते हुए आत्ममग्न रहते।

वृत्तिपरिसंख्यानतप - तप हेतु वे दृढ़ संकल्प ग्रहण करते हैं, बहुत अटपटि प्रतिज्ञायें लेते कि आज एक या दो गली में ही जाऊँगा अथवा जोड़े से देंगे तो भी एक अथवा दो ग्रास ही आहार करूंगा। अथवा जंगल में कोई राजकुमार ने रसरहित आहार बनाया हो तो लूंगा। या कोई अमुक दिन के उपवास के बाद पड़गाहन करता हो तो लूंगा इत्यादि नाना प्रकार की प्रतिज्ञाओं से आहार की वृत्ति को दंड़ित करते हैं। अर्थात् स्वरूपलीनता द्वारा आहार की वृत्ति पर विजय प्राप्त करते हैं।

रसपरित्यागतप - अनाहारी पद की साधना हेतु आहार लेते तो भी छहों रस का त्याग, कभी चार रस का त्याग, कभी तीन रस का तो कभी दो रस का त्याग करते, कभी एक चांवल आदि का आहार लेकर ही परम समरसी स्वभाव की साधना में रत रहते।

विविक्तशय्यासनतप - एकाकी आत्म साधना हेतु कभी गिरी कन्दराओं में, कभी पर्वतों पर, कभी भयानक एकांत स्थानों में, कभी वन जंगल में तो कभी श्मशान में, कभी वृक्ष के तीर पर, तो कभी नदी सरोवर के तटों पर, कभी सिंह, व्याघ्र, भालू, चीते, गेंडे आदि हिंसक पशू निवास करते वहाँ जाकर सिंह सादृश निर्भय हो एवं खड्गासन हो ध्यानस्थ श्री सुदर्शन मुनिराज मुक्ति की साधना करते हुए आत्मिक आनन्द में केली करते।

कायक्लेशतप - निर्मोही मुनीश्वर वर्षा की ऋतु में जहाँ सिर पर मूसलधार जल की वर्षा हो रही हो, अत्यन्त कठोर वायु चल रही हो और वृक्षों का जहरीले नाग, बिच्छु वगैरह जीव आश्रय ले रहे हों, ऐसे भयोत्पादक स्थानों में जहाँ बड़े-बड़े साहसी भी एकपल भी ठहरने को तैयार नहीं हो सकते वहाँ आप महिनों एक आसन से ध्यानस्थ विराजमान रहते।

ठंड़ के समय जब अतिशीत पड़ रही हो जिससे वर्फ आदि जम जाती हो, पेड़ मुरझा जाते हों, देह कम्पायमान हो जाती हो, उस समय खुले वायुमंडल में श्री सुदर्शन मुनिराज देह से ममत्व रहित हो काष्ठ की भांति खड़े-खड़े आत्मध्यान करते।

ग्रीष्म ऋतु में जब गर्मी की ज्वाला खूब बढ़ जाती है, पर्वतों की चोटियाँ जब प्रचण्ड गर्मी से आग की लपटें छोड़ती जिससे सारी देह जलने लगती, उस पर भी वायुवेग से दूर-दूर से गर्म-गर्म रेत एवं धूल के कण चारों ओर से आ आकर पड़ रहे हों। तृषा के कारण कंठ सूखकर जलने लगा हो, और हृदय तड़फने लगे ऐसी अति तप्तायमान सूर्य की किरणों के सामने जगत के प्राणी एक बार देखने का भी साहस नहीं कर पाते ऐसे स्थानों में परम धैर्य के धनी आत्मशांति की प्रचुरता द्वारा क्लेशों पर विजय प्राप्त करने हेतु महीनों ध्यानस्थ खड़े रहते। इस प्रकार इन छह प्रकार के बाह्य तपों को तपते।

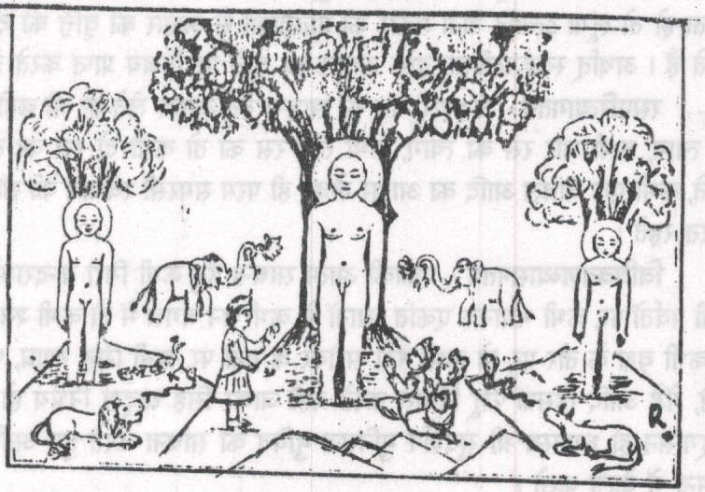

इन छह बाह्य तपों में ३२ अंतराय, ४६ दोषों को टालते हुए आहारचर्या में प्रवर्तते हैं। कायक्लेश हेतु नानाप्रकार के भयाक्रान्त स्थानों में ध्यान करते हैं, वें स्थान उद्गम, उत्पादन, एषणा, संयोजना, अप्रमाण, धूम, अंगार आदि दोषों से रहित होते हैं। इस प्रकार संवर रहित तपस्वी जिन कर्मों को तीनगुप्ति, पंचसमिति, दसधर्म, बारह भावना, और २२ परीषह को जीतने रूप संवर से संख्यात, असंख्यात वर्षों में खिपाते हैं, उन कर्मों को संवरसहित योगी अन्तर्मुहूर्त में खिपा देते हैं। और यह बाह्यतप प्रशंसा योग्य भी है क्योंकि इन तपों से अंतरंग तपों में दृढ़ता प्राप्त होती है। देह में सुखिया स्वभाव का त्याग होकर संसार देह-भोगों से विरक्तता रूप संवेग उत्पन्न होता है इत्यादि अनेक गुणों का दाता बाह्य तप है।

परम निर्दोषता के दायक छह प्रकार के अंतरंग तप भी मुनीश्वर के जीवन काल में सहज हुआ करते हैं, वे इस प्रकार हैं-

प्रायश्चिततप - यद्यपि साधु अपने आचरण में सतत निष्प्रमादी रहते हैं, कारण कि मुनीश्वर तो सदा स्वरूप मन्थर रहते हैं, परन्तु क्वचित कदाचित अजानकारी वश कोई दोष लग जाये तो उसे गुरु के समक्ष बालकवत निर्दोष भाव से कहकर प्रायश्चित अंगीकार करते हैं अथवा तो स्वयं ही अपनी निंदा, गर्हा करके अपनी परिणति को दोषों से वापस लौटाकर अपनी आत्मा में स्थापित करते हैं। यह प्रायश्चित तप विशिष्ट शुद्धता का कारण है और कर्मक्षय का हेतु भी होता है।

विनयतप - निजात्मा का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान, अनुष्ठान रूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र और सम्यग्तप की विनय, इनके धारकों की विनय सभी अंगों के द्वारा करते हैं। इस विनय का अर्थ है क्षेत्रशुद्धि, कालशुद्धि एवं भावशुद्धि पूर्वक करना।

वैयावृत्यतप - जो मुनीश्वर अपने तप में, ध्यान में, गुणों में, और योगनिरोध आदि में महान हैं, श्रेष्ठ हैं, उनकी तथा जो वृद्ध हैं, ग्लान हैं, रूग्ण हैं, ऐसे साधुओं को उठाना, बैठाना, हाथ-पैर दबाना, करवट दिलवाना, संस्तर का संशोधन करना, उन्हें वीतरागभावों का पोषक उपदेश देना इत्यादि रूप से वैयावृत्य तप को निज पर के रत्नत्रय की निर्मलता हेतु करते हैं।

स्वाध्यायतप - जिनेन्द्र उपदिष्ट आगम का निज हित हेतु अध्ययन करना स्वाध्याय है। इसके पांच भेद हैं- वांचना, प्रच्छना, अनुप्रेक्षा, आमनाय और

धर्मोपदेश। वे मुनीश्वर कभी वीतराग भाव की वृद्धि के लिये एवं ज्ञान की विशिष्ट निर्मलता हेतु शास्त्रों को स्वयं पढ़ते, कभी अपने से विशिष्ट ज्ञानी गुरुवरों से पूछते, कभी उसी का बारंबार चिंतवन करते, कभी उसी की दृढ़ता हेतु शुद्धिपूर्वक याद करते और कभी धर्मलोभी जीवों को धर्म का उपदेश देते। इस प्रकार स्वाध्याय से अज्ञान का नाश होता है और सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति एवं निर्मलता होती है। साधु संतों के दो ही कर्त्तव्य हैं, प्रथम कर्त्तव्य ध्यान और दूसरा कर्त्तव्य ज्ञान। ज्ञान की विशिष्टता ध्यान की दृढ़ता का और वैराग्य की वृद्धि का कारण होता है।

व्युत्सर्ग-कायोत्सर्गतप - मुनीश्वरों की चैतन्य आराधक वृत्ति होने से काय के प्रति सहज ही उदासीनता वर्तती है। यही कारण है कि वे भंयकर भय-उत्पादक, उपसर्ग-परिषहदायक वन जंगल में "उपल की नकल समान" पक्ष, मास, ऋतु, अयन आदि लम्बे समय तक अचल ध्यानमग्न खड़े रहते हैं। उस समय कोई द्वेष-कषाय का रोगी आकर उनके मस्तक पर सिगड़ी जलावें, कोई उस शरीर का विदारण करे, कोई भक्षण करे, कोई नानाप्रकार से शरीर को कष्टदायक चेष्टायें करें, परन्तु धीर वीर मुनीश्वर अचल ही रहते हैं। उनका मन सुमेरु जरा भी नहीं कांपता है।

ध्यानतप - आर्त-रोद्र ध्यान तो संसार वर्धक हैं, ये तप नहीं, उल्टे तप विनाशक हैं। इन ध्यानों को प्रत्येक प्राणी अनादि से करता आ रहा है, और इनके फल स्वरूप चतुर्गति में भ्रमता हुआ अनन्त दुख भोग रहा है। इनका मूल ही पर पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट बुद्धि का होना, निज आत्मा को भूलकर शरीर की विकृत दशा में पीड़ा का वेदन करके निदान बंध आदि द्वारा कुयोनियों को प्राप्त करता चला आ रहा है। वहाँ बुद्धिहीन होकर हिंसा, झूंठ, चोरी, कुशील, एवं परिग्रह के संचय में ही आनन्द मानकर संसार को बढ़ाता चला आ रहा है। इसलिए मुनीश्वर धर्म और शुक्ल ध्यान जो कि मोक्ष के कारण हैं, उन्हें ध्याते हैं। धर्मध्यान का इच्छुक इन गुणों वाला होता है। इन्द्रियों पर विजय करणशील हो, कषायों का निग्रह करने वाला हो, प्रचुर निर्जरा की चाह वाला हो, चित्त (मन) को वश करने वाला हो, रत्नत्रय मार्ग में अचल रहने वाला हो, अन्तर में आत्मदृष्टि के बल से इन्द्रियों एवं मन को रोकने वाला हो, कपट रहित सरल स्वभावी हो, परिग्रह रहित हो, आत्मा में लघुत्वगुण प्रगट करने वाला हो, अष्टमद रहित और मार्दव अंग का धारक हो, जिनसूत्र का

उपदेश करने वाला हो, और जिनेन्द्र देव द्वारा कथित सत्यार्थ पदार्थों का श्रद्धानी हो, ये धर्म के लक्षण हैं, इनसे धर्म पहचाना जाता है। इन गुणों के बिना धर्म नहीं होता है।

धर्मध्यान के चार भेद हैं-आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय।

आज्ञाविचय - जिनेन्द्र देव द्वारा कहे गये छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय, सात तत्व और नवपदार्थ हैं। प्रत्येक द्रव्य प्रति समय उत्पाद व्यय करता हुआ भी ध्रौव्य रहता है, वह अपने द्रव्य क्षेत्र, काल एवं भाव की सीमा में रहकर ही परिणमता है। कभी भी कोई द्रव्य अपने स्वचतुष्टय का त्याग नहीं करता, यह प्रत्येक वस्तु की अटल मर्यादा है। और भी जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित जो सिद्धान्त हैं वे परम सत्य हैं। वे किसी के द्वारा खण्डित नहीं किये जा सकते। अतः जो सूक्ष्मतत्त्व हैं, उन्हें जिनेन्द्र देव की आज्ञानुसार ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि जिनेन्द्रदेव अन्यथावादी नहीं होते। इस प्रकार जिनेन्द्र उपदिष्ट पदार्थों का निश्चय करना यह "आज्ञाविचय" नाम का प्रथम धर्मध्यान है।

अपायविचय - उसी प्रकार निश्चय-व्यवहार रत्नत्रय अथवा भेदाभेद रत्नत्रय की भावना के बल से मेरे और अन्य जीवों के कर्मों का नाश कब होगा ? वीतरागभाव कैसे प्रगट होगा ? 'मैं' एवं समस्त प्राणी अष्ट कर्म रहित सिद्ध कैसे होवेंगे इस प्रकार का चिंतवन करना यह "अपायविचय" नाम का दूसरा धर्मध्यान है।

विपाकविचय - शुद्ध निश्चयनय से अर्थात् वस्तुस्वभाव से तो प्रत्येक आत्मा शुभाशुभ कर्मों के उदय, उदीरणा, बंध, मोक्ष आदि से रहित है, फिर भी अनादि कर्मबंध के कारण पाप के उदय से नरकादि के दुःख रूप फल का अनुभव करता आ रहा है और पुण्य के उदय से देवादि के सुखरूप फल को भोगता आ रहा है, इस प्रकार का चिंतवन करना "विपाकविचय" नाम का तीसरा धर्मध्यान है।

संस्थानविचय - अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक के भेद से लोक के तीन विभाग हैं अर्थात् लोकानुप्रेक्षा में कहे गये पदार्थों के आकार का, संस्थान आदि का चिंतवन करना "संस्थानविचय" नाम का चोथा धर्मध्यान है।

इस प्रकार पदार्थों का, जीवों को मुक्त होने का, कर्मों के विपाक आदि का एवं आकार आदि का स्वरूप जानकर सबसे भिन्न निजात्मा का ध्यान करना ही परमार्थ से धर्मध्यान है।

इसी प्रकार चार भेद वाला शुक्लध्यान भी होता है। जब वैरागी (साधु) धर्मध्यान में आत्मा को ध्याता है, तब ध्यान में विशेष-विशेष निर्मलता आती जाती है, जब धर्मध्यान की सीमा से भी अधिक पवित्रता वृद्धिगत हो जाती है तब उस उज्जवल ध्यान का नाम शुक्लध्यान है। इस ध्यान में शुद्धि की वृद्धि से गुणस्थानों के अनुसार विभाजन किया गया है, कि अमुक गुणस्थान तक प्रथम भेद उसके आगे द्वितीय भेद इत्यादि उनके पृथकत्ववितर्कवीचार, एकत्ववितर्क-अवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती और व्युपरतक्रियानिवृति ये चार भेद हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है-

पृथकत्ववितर्कवीचार - पृथकत्व का अर्थ अनेक, वितर्क का अर्थ श्रुत और वीचार का अर्थ अर्थों का अक्षरों का एवं योगों का पलटना। द्रव्य, गुण, और पर्याय के भिन्नपने को पृथकत्व कहते हैं। स्व-शुद्धात्मा की अनुभूति जिसका लक्षण है ऐसे भावश्रुत को और उसके (स्वशुद्धात्मा) के वाचक अंतर्जल्परूप वचन को वितर्क कहते हैं। इच्छा के बिना एक अर्थ से दूसरे अर्थ में, एक वचन से दूसरे वचन में, मन, वचन, काय इन तीनों योगों में से किसी एक योग से दूसरे योग में जो परिणमन (पलटना) होता है उसे वीचार कहते हैं। इसका अर्थ इस प्रकार है कि यद्यपि ध्यान करने वाला जीव निज शुद्धात्मा का संवेदन छोड़कर बाह्य पदार्थों का चिंतन नहीं करता है, तो भी उसे जितने अंश में स्वरूप स्थिरता नहीं है उतने अंश में इच्छा के बिना विकल्प उत्पन्न होते हैं, इस कारण इस ध्यान को "पृथकत्ववितर्कवीचार" कहते हैं।

एकत्ववितर्कअवीचार - इस ध्यान में एक योग अथवा एक ही द्रव्य को ध्याता है। निज शुद्धात्म द्रव्य में अथवा विकार रहित आत्मसुख के अनुभव रूप पर्याय में अथवा उपाधिरहित निज आत्मा का जो ज्ञान रूप गुण में, इन तीनों में से जिस एक में प्रवृत्त हो उसमें ही वितर्क नामक स्वसंवेदन लक्षण युक्त भावश्रुत के बल से स्थिर होकर अवीचार रूप होता है अर्थात् द्रव्य, गुण, पर्याय में परावर्तन नहीं करता है इस कारण इसे "एकत्ववितर्कअवीचार" कहते हैं।

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती - जिसमें श्रुतज्ञान का अवलंबन नहीं है और अर्थ, व्यजंन योग का पलटना भी नहीं है, सूक्ष्मकाय की क्रिया का व्यापार रूप है और अप्रतिपाती, नहीं गिरने वाला है, सूक्ष्मकाय योग को रोककर केवली भगवान निश्चल रहते हैं, इसलिये इसे "सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती" कहते हैं।

व्युपरतक्रियानिवृत्ति - जिनमें से क्रिया विशेष रूप से उपरत अर्थात् निवृत्त हुई है, समस्त योगों का निरोध हो गया है इसलिये व्युपरतक्रिया है और अनिवृत्ति हो अर्थात् मुक्ति न हुई हो वह "व्युपरतक्रियानिवृत्ति" है। इसके आगे और कोई ध्यान नहीं होता इसलिये इसका नाम अपश्चिम भी है। यह सर्वोत्कृष्ट ध्यान है।

संयम की प्रकृष्टता एवं ज्ञानाराधना की प्रचण्डता से अल्पकाल में ही पूज्य सुदर्शन मुनिराज को अमूल्य रत्नों से परिपूर्ण द्वादशांग का ज्ञान प्रगट हो गया। जैसे मंत्र के बल से सर्प शक्तिहीन हो जाता है, वैसे ही परम तपस्या एवं धर्मध्यान के बल से मुनिवर के कर्म शक्तिहीन हो गये और उनकी आत्मा अति (उत्कृष्ट) उन्नत हो गईं तथा उनको मोक्ष की हेतुभूत एवं सहायक अनेक ऋद्धियाँ भी सहज प्राप्त हो गई। सदा वैराग्य भावना को भाते हुए मुनीश्वर को प्राणीमात्र के प्रति मैत्रीभाव वर्त रहा है, उनके हृदय में राग-द्वेष आदि दोष स्वप्न में भी स्थान नहीं पाते, किन्तु मोक्षपथ पर अग्रसर करने वाली सहज आलोकमयी ध्यान ज्योति जल रही है।

इस प्रकार चारित्र और व्रतों को धारण करने वाले, धर्म-शुक्ल-ध्यान में अपनी आत्मा को दृढ़तापूर्वक लगाने वाले, इन्द्रिय एवं कामदेव पर विजय प्राप्त करने वाले, सब दोषों के नाश हेतु सतत प्रयत्न परायण, अंतिम लक्ष्य (मोक्ष) तक पहुँचने वाले, गुणनिधि, मुक्तिकंथ, महात्मा श्री सुदर्शन तपोधन शिवपुरी की यात्रा में आगे बढ़ते ही जा रहे हैं।

चैतन्य की परिणति चैतन्य में सभी ओर से लिपट गई है, चैतन्यमयी वृत्ति को व्रत कहंते हैं ऐसे परमार्थ व्रतों से आपका आत्मा शोभ रहा है, विवेकीजन ऐसे व्रतों को सदा विनयपूर्वक शिरोधार्य करते हैं क्योंकि वे शिवसुख को प्राप्त कराते हैं। वे जगत द्वारा वंदनीय, पूज्यनीय हैं। वे व्रत ही पूर्ण सुख के असाधारण कारण हैं। जिनगुणसम्पत्ति का लाभ इन्हीं के प्रताप से मिलता है। निश्चय-व्यवहार चारित्र का मूल निज शुद्धात्मा ही है जिसकी आराधना से श्री सुदर्शनजी अब सुदर्शनीय सुपूज्यनीय बन गये।

पूज्य श्री विमलवाहन योगीराज एवं पूज्य श्री सुदर्शन तपोधन आदि संघस्थ सभी मुनिवृन्द मुझे अपने जैसे गुण प्रदान करें। जो मुक्ति सुन्दरी की प्राप्ति के लिए सदा चेष्टावंत हैं, जो ध्यान के प्रभाव से सब पाप रूपी विषबेली को काटकर ज्ञान पयोनिधि के पार को पा चुके हैं, जिनमें परमधैर्य, शीलव्रत आदि श्रेष्ठ गुण वास कर रहें हैं, ऐसे धर्मात्मा जनों से पूज्य हैं, प्रशंसनीय हैं ऐसे तत्त्वार्थदर्शी योगीश्वरों को मैं नमस्कार करता हूँ।

धर्म से पराजित संकट

व्रज से टकराना अर्थात् सदा पराजय को वरण करना है। व्रज-अंगी धैर्यवान, वीर्यवान श्री सुदर्शन आदि जितने भी अन्तःकृत केवली हुए हैं, उन सभी ने उपसर्ग परिषहों पर विजय प्राप्त करके आयु के अन्त में केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्षलक्ष्मी का वरण किया है, उन परम तपोधनों को उन जैसे गुणों की प्राप्ति हेतु में प्रणमन एवं वंदन करता हूँ।

निजात्मा की साधना करने वाले साधु परमेष्ठी चातुर्मास के सिवाय किसी एक स्थान में ३ या ५ दिन से अधिक नहीं ठहरते। पूज्य श्री सुदर्शन मुनिवर भी संयम की उज्जवलता हेतु एवं निर्ममत्वता हेतु ईर्यासमिति (चार हाथ भूमि शोध कर चलना) पूर्वक अनेक वन-उपवन, नगर-ग्राम आदि में विहार करने लगे (निरख निरख पग वे धरें, पाले करुणा अंग जी)।

स्वरूप में विश्रांति रूप चैतन्य का निस्तरंग अत्यन्त निर्विकार परिणामन रूप तप की एवं संयम की अभिवृद्धि हेतु गुरुवर कभी कभी आहार चर्या हेतु नगर में पधारते, कभी भोजन मिल जाये कभी न भी मिले, कभी रसयुक्त तो कभी नीरस भोजन का लाभ हो परन्तु आ हा हा! समदर्शी गुरुवर हर्ष-विषाद रहित सात गुण युक्त दाता द्वारा नवधा भक्ति से दिया गया शुद्ध प्रासुक अल्प आहार लेकर अपने ध्यान-ज्ञान में मग्न हो जाते।

इस प्रकार दीक्षा-शिक्षा एवं प्रायश्चित आदि में कुशल, उपसर्ग-परिषहों पर जय करने में धीर-वीर, द्वादशांग के पारगामी, व्रजवृषभ, व्रजनाराच संहनन के धारी मुक्तिपथिक श्री सुदर्शन मुनिवर को पूज्य श्री विमलवाहन गुरुवर ने एकल विहारी रहने का आदेश दे दिया। गुरु आदेश को शिरोधार्य करके मूल एवं उत्तर गुणों को निर्दोष पालते हुए मन-वचन-काय को शुद्ध करके अनेक देशों में विहार करते

हुए श्री सुदर्शन मुनिवर पाटलीपुत्र (पटना नगर) के उद्यान में पहुँचे। वहाँ श्रावकों की बहुत मंडली निवास करती है। एक दिन मुनिवर आहार चर्या हेतु नगर में पधारे, वे मन में विचार करते हैं कि कौन श्रावक का अर्थात् उत्तम पुरुषों का घर है और कौन अधम का। क्योंकि साधु संत उत्तम पुरुषों के घर ही आहार ग्रहण करते हैं। धर्म कार्य के अनुकूल वेशभूषा, विनययुक्त धार्मिक वचन एवं आचरण शुद्धि आदि द्वारा श्रावक की पहचान हो जाती है। जिसे शरीर पोषण की ही इच्छा होती है वह भक्ष्य-अभक्ष्य, ऊंच-नीच कुल कुछ नहीं देखता, परन्तु मुनीश्वर तो शरीर के प्रति परम उदासीन होते हैं। .शरीर रहे या न रहे, शरीर पुष्ट हो या दुर्बल उसके प्रति उपेक्षा भाव होने से तथा संयम की स्थिरता एवं वृद्धि के लिये आहार लेते हैं, उनकी चर्या के अनुकूल मिले तो ही लेते हैं अन्यथा नहीं।

अपने महा सौन्दर्य से कामदेव को लज्जित कर देने वाले धैर्यवान महामुनीश्वर श्री सुदर्शनजी को आहार चर्या हेतु जाते देखकर अभयमती रानी की धाय (जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है) ने उन्हें देखा। तब उसने अपनी स्वामिनी देवदत्ता नामक वेश्या से जाकर कहा- देखो ! जिस सुदर्शन योगी की प्रशंसा मैंने आपसे की थी, वह इस समय यह जा रहा है। अब आप अपनी शक्ति का यदि उपयोग कर सकती हो तो करिये। इतना सुनते ही देवदत्ता को अपनी की हुई प्रतिज्ञा स्मरण हो आई। बस अब क्या था ? वेश्यायें स्वभाव से वशीकरण के षडयंत्र रचने में आशुकवि समान होतीं हैं। देवदत्ता वेश्या ने अपनी एक सेविका को बुलाकर कहा-तुम तुरंत कृत्रिम श्राविका का भेष बनाकर इस सुदर्शन मुनि को फंसाकर यहां ले आओ। शीघ्र जाओं।

छल-कपट में कुशल, काम वासना से वासित उस दुष्टा सेविका ने श्राविका का भेष धारण कर लिया और शीघ्र ही द्वार पर जा खड़ी हो गई, वहाँ से योगीराज श्री सुदर्शनजी निकले। सेविका उन्हें विनयपूर्वक प्रणाम करती हुई बोली- हे स्वामी ! नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु/अत्र, अत्र, अत्र/तिष्ठ:, तिष्ठ:, तिष्ठ:। मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि, आहार-जलशुद्धि है, हे स्वामी पधारिए।

मुनीश्वर भी वहाँ खड़े हो गये। उसने (सेविका) ने तीन प्रदक्षिणा देकर मुनिराज को गृहप्रवेश करने की प्रार्थना की। सरल स्वभावी मुनिराज उस दुष्टा की छल लीला को कुछ भी समझ नहीं पाये। वह सेविका मुनिवर को देवदत्ता के घर

में ले गई, वहाँ एक कमरे में मुनिराज को काष्ठ के आसन पर बैठने के लिये बोली-हे स्वामी ! उच्चासन पर विराजिये। मुनिराज काष्ठासन पर बैठ गये। तब शीघ्र ही कुकर्मिणी देवदत्ता वहाँ आकर दूसरे पट्टे पर बैठ गई।

पापवासना के वशीभूत वह वेश्या मुनिराज श्री सुदर्शन जी के सामने खोटी चेष्टाओं के साथ अपने फंदे में फंसाने के लिये कामपोषक मधुर शब्दों में बोली-हे कामदेव को लज्जित कर देने वाले सौन्दर्य के निलय महात्माजी ! आपके सौन्दर्य युक्त तेज को देखते ही मेरे मन में एक अद्‌भुत आनन्द की धारा बहने लगी। आप गुणों के सागर हो। हमारे महाभाग्य से आपका यहाँ पधारना भी हो गया। आपके शरीर की कांति देखकर मेरे नयन आज चकमका रहे हैं। मैं सोचती थी कि मेरे समान और कोई सुन्दर नहीं है परन्तु मेरा ऐसा भ्रम आप को देखते ही चूर-चूर हो गया। मेरे रोम-रोम में आप की सुन्दरछवि ही समाई हुई है। आप तो बुद्धिमान हो फिर पता नहीं चलता कि आप व्यर्थ ही इतने दुःख एवं क्लेश क्यों भोग रहे हो ? ऐसे संकटों में दिन क्यों काट रहे हो ? आप ही कहियेगा कि इतना उग्र तप तपने से और शरीर को इतना अधिक क्लेश देने से क्या फायदा है? और फिर आपको करना भी क्या है जिस कारण इतने क्लेश सहे जांय ? आप इन सभी क्लेशों को ठुकरा कर यहाँ ही सानंद रहिये। आपकी दया से मैंने बहुत धन इकट्ठा कर रखा है। मेरे पास स्वर्ण, हीरा, मणिमुक्ता, अनमोल रत्नों के सुन्दर सुन्दर आभूषण हैं। भोगोपभोग की उत्तम से उत्तम सामग्री मेरे पास है।

ऊंचे से ऊँचे कीमती वस्त्र मेरे पास हैं। विशेष क्या कहूँ- एक राजभवन भी मेरे संग्रह की समानता नहीं कर सकता। इनके अतिरिक्त जगत श्रेष्ठ सौन्दर्य जैसा आप में है वैसा ही मुझ में भी है। विधाता ने आपकी और मेरी जोड़ी भी अच्छी बनाई है। यही कारण है कि मेरा मन आप पर भ्रमर के समान मुग्ध हो गया है, इसलिये हे प्यारे ! मेरा निवेदन स्वीकार कर यहीं रहिए। हम दोनों मनवांछक भोग विलास करके जीवन सफल बनायेंगे।

क्योंकि इस नश्वर संसार में एक स्त्रीरत्न ही तो सर्वश्रेष्ठ ग्रहण करने योग्य वस्तु है। वही सम्पूर्ण इन्द्रियों को तृप्ति देने वाली है। आप जैसे बुद्धिमानों को उचित है कि इसको अपनाकर खूब भोगोपभोग करें। विधाता ने जितनी भोग्य सामग्री बनाई है वह सब स्त्री-पुरुष के आनन्द और भोग हेतु ही बनाई है। अतएव इन इन्द्रियों को तृप्ति देने वाली एवं पेट को भरने वाली, जीवन सफल बनाने वाली सामग्री को बुद्धिमान सदा अपनाते आये हैं, इसलिये आप भी सहर्ष अपनाइयें। स्वर्ग सुख के हेतु जो आप तप कर रहे हो वह तो आपको सहज ही मिल रहें हैं, अब क्या करना तप करके ? और यदि यहाँ तृप्ति न हो तो वृद्धावस्था में तप कर लेना, अभी तपस्या का समय नहीं है नाथ। जो बुद्धिमान सज्जन व्यक्ति होते हैं वे शुरू से अन्त तक अपनी अवस्था के अनुकूल धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का सेवन करते हैं। आप को भी अपनी अवस्था के अनुकूल प्रवर्तन करना चाहिए।

संसार, देह, भोगों से विरक्त शील शिरोमणी पूज्य श्री सुदर्शन मुनीश्वर तो उपसर्ग के ज्ञाता-दृष्टा बने तिष्ठ रहे हैं। यद्यपि चोके में कुछ योग्य व्यवस्था न हो तो मुनीश्वर लौट के आ सकते हैं। परन्तु वेश्या ने अपने चातुर्य से बाहर जाने का रास्ता मुनिवर के अन्दर आते ही बन्द करवा दिया था। और मुनिराज दरवाजा खोलना या बंद करने आदि आरंभ के त्यागी होते हैं। वनवासी संतों के किसी भी प्रकार का आरंभ-परिग्रह होता ही नहीं है। मुनिराज, उपायांतर का अभाव होने से वहाँ ही ध्यानस्थ विराजमान हैं। वेश्या की विवेकहीन बातें सुनकर और पाप भाव से वासित कुचेष्टाओं को ज्ञातकर जगत के नाना जीवों के परिणाम, उनके नाना प्रकार के कर्म उदय एवं उनकी अनेक प्रकार की लब्धियों का विचार करते, कभी संयोगों की विचित्रता, उनकी अशुचिता का विचार करते, कभी मन, वचन, काया रूप इस जड़ देह का विचार करते, कभी स्वरूप में लीन हो अतीन्द्रिय आनन्द का रसपान

करते। इस प्रकार मुनीश्वर को पाषाण के समान अकंप बैठे हुए देख देख कर वेश्या का क्रोध प्रतिक्षण वृद्धिगत होता जा रहा है और अपने कार्य की असफलता महसूस करने से, उपायों का अभाव होने से अन्ततोगत्वा वह शून्यवत हृदयवाली सी हो गई।

वेश्या अपने किये कुकृत्यों पर विचार करती है, अरे ! मेरे जैसी व्यक्ति भी सुदर्शन को नहीं ड़िगा सकी तो निश्चित ही यह कोई अद्‌भुत पुरुष है।

देवदत्ता वेश्या यह तो अच्छी तरह जान ही गई थी कि यह कोई महापुरुष है, परन्तु जैसे पतंगा दीपक को देख देखकर बारंबार उस पर झपटता है, वैसे ही काम-अग्नि की प्रचंड ज्वाला में जलने वाली वेश्या यह निर्णय ले चुकी थी कि जैसे भी बने मैं आज इसके साथ संभोग करके ही रहूँगी, इस कारण उसने जब देखा कि मेरे सभी प्रयत्न व्यर्थ जा रहे हैं और यह तो ठूठ के जैसा बैठा ही है तब उसने श्री सुदर्शन मुनिराज को उठाकर अपने पंलग पर लिटा लिया और अपनी कामतृप्ति के लिये अनेक कुचेष्टायें करने लगी। देवदत्ता द्वारा किये जाने वाले उपसर्ग को देखकर श्री सुदर्शन स्वामी ने सन्यास धारण कर लिया और विचार किया कि यदि इसके उपसर्ग में मरण हो जावे तो मेरा यावज्जीवन चार प्रकार के आहार का त्याग है और यदि आयु अवशेष हो और उपसर्ग से बच जाऊँगा तो पारणा करूँगा। इस संकल्प के साथ शरीर से निर्ममत्व होकर काष्ठ की भांति अचल हो पंचपरमेष्ठी के स्वरूप में अपने उपयोग को लगा लिया।

मुनिराज को काष्ठ-पाषाण के समान निश्चल देखकर वह और अधिक कुपित हुई, काम के आवेश में आकर उसने अपने सब वस्त्र उतार दिये और निर्वस्त्र होकर मुनिराज के शरीर एवं इन्द्रियों के साथ खूब मनमानी कुचेष्टायें करने लगी, उनके सुन्दर शरीर पर गुड़ पर मक्खी की भांति चिपक गई, मुनि को विचलित करने के लिये हाव-भाव विलास आदि के भी बहुत प्रयत्न किये, मुनि के अंग-उपांगों को भी नष्ट करने लगी। उसने मुनि के मन को और ब्रह्मचर्य को भ्रष्ट करने में किसी भी प्रकार की कसर नहीं रखी। मुनिराज तो अपने मन में दृढ़ हैं। तन जावे तो जावे परन्तु मैं ड़िगने वाला नहीं हूँ। देवदत्ता वेश्या द्वारा महान विघ्न को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कामीजन कभी भी अपने को रोक नहीं सकते अर्थात् उनका वासनायुक्त मन काबू से बाहर हो जाता है। उपसर्ग के कारण मुनिराज का प्रतिक्षण

वैराग्य वृद्धिगत हो रहा है और वेश्या का प्रतिक्षण कामदाह वृद्धिगत हो रहा है, उसका क्रोध बढ़ता ही जा रहा है।

मुनिराज के शरीर पर भंयकर आक्रमण करने पर भी जब वेश्या का काम सिद्ध नहीं हुआ, तो वह दुःख उत्पादक, मर्मछेदी वचन बोलने लगी रे सठ सुन! यदि तूंने मेरी बात नहीं मानी तो मैं तुझे ऐसे भयंकर विघ्न करना शुरू करूँगी कि जिससे तेरा जीना भी दुर्लभ हो जायेगा। श्री सुदर्शन मुनिराज मौन व्रत को धारण किये हुए ध्यानस्थ ही हैं। वेश्या को देखकर तो ऐसा जान पड़ता है कि मानों उस पर काम का दसवाँ वेग ही वार कर रहा हो, उसे काम-पीड़ा के कारण बेचेन कर रहा हो। वह तीन दिन और तीन रात्रि पर्यंत सतत कामोत्पादक वचन, कुचेष्टायें करती ही रही परन्तु धन्य हैं मुनिवर, आप तो अचल मेरू बन गये।

देवदत्ता ने श्री सुदर्शन मुनिवर को इतने कष्ट दिये कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। फिर भी समता के सागर, शांति के हिमालय, वैराग्य की साक्षात् मूर्ति, अकषायी विभो, ब्रह्मानंदी योगीराज के मन में वेश्या के प्रति जरा भी द्वेषभाव पैदा नहीं हुआ, और न ही वेश्या की कामसुख विषयक बातों से उन्हें किसी तरह का रंचमात्र भी प्रेम पैदा हुआ। आ हा हा।

प्रेम भाव हो सब जीवों में गुणिजनों में हर्ष प्रभु।
करुणा स्रोत बहे दुखियों पर दुर्जन में मध्यस्थ विभु॥

श्री मुनिराज की स्थिरता देखकर देवदत्ता के हृदय में उद्वेग तो बहुत हुआ, परन्तु वह तृणरहित जमीन पर पड़ी हुई आग की तरह कुछ न कर सकी। जो धैर्यवान और वीरवान हैं उनका दुष्ट पुरुष या वेश्यायें क्या बिगाड़ सकतीं हैं ? कुछ भी नहीं। दैव संयोग से पर्वत चलायमान हो सकता है परन्तु स्वरूपनिष्ठ योगियों का विशुद्ध मन विचलित नहीं हो सकता। मुनिराज की स्थिरता देखकर देवदत्ता का गर्व चूर-चूर हो गया। उसके सारे प्रयत्न अंधकार में तीर चलाने के समान निष्फल हो गये। अब वह सोचती है इसे घर से बाहर किस प्रकार करूँ। षड्यंत्र रचने में कुशल उसे तुरन्त एक उपाय सूझ आया। रात्रि का समय था और सुदर्शन मुनि आत्मलीन थे, बस इस योग को शुभ समझ वह मुनि को कंधे पर रखकर घर से चौकन्नी हुई शीघ्रता से श्मशान की ओर चली जा रही है। श्री सुदर्शन मुनिराज को कंधे पर तो रखे है, परन्तु वह रास्ते भर उनके शरीर में चूंटीयाँ लेना, नखों से खरोंचना, हृदय विदारक वचन बोलना इत्यादि प्रकार से ताड़ना देती

जा रही है। जहाँ चितायें धधक रहीं हैं। चारों ओर भयानक वातावरण युक्त श्मशान में ले जाकर कायोत्सर्ग रूप में खड़ा कर दिया। और वह घर को वापिस आ गई।

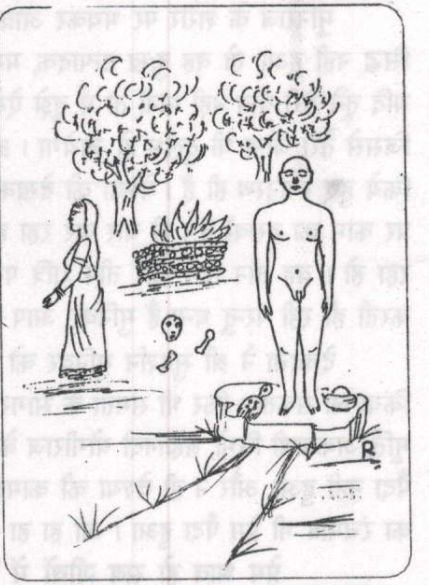

देवदत्ता वेश्या सोच रही है कि इसने मुझे बहुत दुखी किया है इसलिये यह अपने किये कर्मों का अब अच्छा फल भोगेगा, इस श्मशान में चांड़ाल इससे यहाँ खड़े रहने का कर मांगेगा और इसके पास कुछ तो है नहीं, चांडाल के सामने यह मौन लेकर खड़ा रहेगा तब वह भी अनेक प्रकार का कष्ट देगा तब अक्ल ठिकाने लग जायेगी। यहाँ भयंकर विकराल रूप धारण करके अनेक प्रकार के राक्षस आदि इसे सतायेंगे। चिताओं की अति गर्म-गर्म लपटें एवं दुर्गंध आयेगी तब देखते हैं कैसे यह अचल रह सकता है। इस तरह जितने प्रकार से वह दुःख दे सकती थी उसने कुछ भी बाकी नहीं छोड़े।

श्मशान में खड़े-खड़े मुनीश्वर श्री सुदर्शनजी स्त्री परीषह पर विचार कर रहे हैं-

जे प्रधान केहरि को पकड़े, पन्नग पकड़ पांव सो दावैं।
जिनकी तनक भों देख बांकी, कोटिन शूर दीनता जापै॥
ऐसे पुरुष पहाड़ उड़ावन, प्रबल पवन तिय वेद पयापै।
धन्य धन्य वे शूर साहसी मन सुमेरु जिनका नहीं कांपैं॥

जंगल का प्रधान (राजा) केशरीसिंह अपने से हीन शक्ति वाले प्राणियों को पकड़ कर खा जाता है। बड़े-बड़े निर्भयी पुरुष काले फणधर नाग को भी पैरों के नीचे दबा लेते हैं। बड़ा बलवान सुभट कि-जिसकी नेत्रों की भोंह जरा सी टेड़ी देखते ही करोड़ों शूरवीर योद्धा भी उसके सामने दीन बन जाते हैं, नम जाते हैं, उसके दास हो जाते हैं। और पहाड़ उठाकर फेंक देने वाले गिरधर जैसे पराक्रमी

पुरुष भी स्त्रियों के आधीन हो जाते हैं। अर्थात् जगत के बड़े-बड़े शक्तिशाली दूसरों के सामने ही अपना पौरुष दिखलाते हैं परन्तु वे भी स्त्रियों के आधीन हो जाते हैं, जोरू के गुलाम बन जाते हैं, परन्तु वे शूर साहसी धन्य हैं जो स्त्रियों की कामोत्पादक सम्पूर्ण चेष्टायें होने पर भी उनका मन रूपी सुमेरू जरा भी कांपता नहीं है। तब फिर वचन एवं काय से किसी भी प्रकार से ड़िगने की बात ही कहाँ रह जाती है ?

उर्वसी जैसी देवांगना भी जिन्हें ड़िगा नहीं पाती उनका सारा परिश्रम निष्फल चला जाता है। जैसे अनादि-निधन तीर्थंकरों का जन्माभिषेक जिस पर्वत पर होता है उसका नाम सुमेरूपर्वत है, वह शाश्वत है, अचल है, उसे कोई हिला नहीं सकता, वैसे ही ब्रह्मस्वरूप में स्थिर दृष्टिवंत तपोधनों को जगत की कोई भी स्त्रीयाँ विचलित करने में समर्थ नहीं होती हैं। वे तो अचल स्थिर ही रहते हैं।

देवदत्ता घर आने के बाद बहुत पछताने लगी, उसे ऐसा लगा अरे ! ये महात्मा मुझे कोई बुरी श्राप न दे दें, इसलिये वह एवं धाय अपने किये पापभावों की क्षमा याचना मांगने के लिये पटना नगर के उद्यान में पूज्य श्री सुदर्शन मुनिराज के निकट पहुँची। वे देखती हैं गुरुवर बिना आहार के ही अनाहारी सिद्धपद की साधना में मग्न हैं। कुछ समय के बाद गुरुवर का ध्यान भंग हुआ। तब वे दोनों गुरुचरणारबिंदों को नमस्कार करती हुई हाथ जोड़ कर बोलीं, हे शील शिरोमणी ! हे धीर वीर ! मेरे पापों को क्षमा कीजिए, हमने अज्ञानतावश आपको बहुत दुःख दिये हैं। काम के वशीभूत होकर आपको शारीरिक, वाचनिक एवं मानसिक अपरंपार दुख दिये हैं। हे स्वामी ! हमें क्षमा करें। हमारे दोषों का प्रायश्चित देकर हमें शांति दीजिए नाथ। हमें भी सद्बुद्धि दीजिए अब ऐसा अपराध कभी भी नहीं करेंगे। हम नहीं जानते थे कि आप इतने महान वैरागी महात्मा हो। धर्मात्मा हो। पवित्रात्मा हो। हे गुरुवर अपनी धर्ममयी अमृतवाणी का सिंचन करके हमें शांति का दान दीजिए।

अपने किये पापों की निंदा, गर्हा करने वाली धाय और देवदत्ता वेश्या को तथा कुछ धर्म पिपासु जनों को देखकर मुनिवर सोचते हैं, कल का पापी आज का धर्मात्मा बन सकता है, अंजन चोर निरंजन हो गये, विद्युच्चरचोर एक क्षण में

महामुनीश्वर हो गये, परिणाम पलटते कोई देर नहीं लगती है। जब पशु से परमेश्वर बन गये, तब फिर नर से नारायण बनना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

मुनिवर का हितकारी संबोधन

इस चतुर्गति संसार में प्राणी अज्ञानतावश क्या क्या बोल जाता है, क्या-क्या कर डालता है और क्या-क्या करवा डालता हैं, उसे कुछ खबर ही नहीं। उसे हिताहित का विवेक ही नहीं, काँच और रत्न की पहचान ही नहीं, धर्म-अधर्म का विवेक ही नहीं। वह नेत्रवान होने पर भी अंधा बना रहता है। उसे पापात्मा और धर्मात्मा में कुछ अंतर ही नहीं जान पड़ता है।

हे भव्य ! पंच पापों के पोषक कोई भी वचन हों वे सभी अक्षरशः बुराइयों से ही भरे होते है, क्योंकि वे पापभावों के कार्य हैं, उनसे ही रचित हैं। चार प्रकार की विकथायें वे सभी दर्शन भेदनी ही कथायें हैं।

जब प्रत्येक प्राणी का शरीर मल, मूत्र, हाड़, मांस, खून, पीव, चर्बी एवं चाम से ही बना है, जिसके नवद्वारों से सदा मल ही बहता रहता है, जो समस्त अशुचिता की मूर्ति है, वह मांस का पिंड, रत्न कभी हुआ ही नहीं तब फिर स्त्री का महानिंद्य देह उसमें भी काम-वासना से दूषित मन, व्यभिचार का व्यापार करने वाली महिला का शरीर "रत्न" कैसे हो सकता है ? उसे रत्न मानना तो मानव भव रूपी रत्न को अनन्त काल के लिये दूर फेंक देनेवाली मूर्खता ही है। जैसे लोहचुंबक में लोह को आकर्षित करने की स्वाभाविक शक्ति होती है। वैसे ही महापापोदय से प्राप्त स्त्री का देह, उसकी प्रत्येक इन्द्रियाँ पापों को आकर्षित करने का केन्द्रबिन्दु हैं। अशुचिता का भंड़ार है। पापों में मोहित मति जीव को ही जगत के जड़पदार्थ सोना, चांदी, हीरा, माणिक, मोती, सुन्दर वस्त्राभूषण महल-मकान अच्छे लगते हैं वास्तव में ये अजीव पदार्थों की रंग बिरंगी पर्यायें धूल का ढेर हैं, श्मशान की राख है.। यह सुन्दर दिखने वाली काया क्षण में धू-धू होकर जलने वाली है और तुफानी वायु में उसके कण उड़कर कहाँ चले जायेंगे कुछ पता ही नहीं चलेगा।

जैसे हड्डी को चबाते हुए कुत्ते की डाढ़ में हड्डी लगने से खून निकलता है, उसे चांटता हुआ वह यह जानता है कि हड्डी में से खून आ रहा है। वैसे ही यह विषयों का लम्पटी प्राणी विवेकहीन होकर यह मानता है कि इन्द्रियों और इन्द्रियों

के भोगों में से आनन्द आ रहा है, यदि वास्तव में उनमें आनन्द ही होता तो इसे शांति या तृप्ति होनी चाहिए थी परन्तु ज्यों-ज्यों इन्द्रिय-विषयों में झंपापात करता है त्यों त्यों विषयभोग का रोग बढ़ता ही जाता है और प्राणी उन विषयों में ही प्राण गमाकर पाप की गठरी बांधकर अधोगति में चला जाता है। इन्द्रिय विषय तो सर्वभक्षी अग्नि कुण्ड है। ज्ञान, वैराग्य रूपी धन को लूटकर मति नष्ट करके अनन्त दुःखों के निकेतन ऐसे नरक-निगोद में ले जाते हैं। इसलिये हे प्राणी ! इस नरदेह को पाकर तुझे अशरीरीदशा का कारणभूत ऐसा सम्यक्रत्नत्रय प्राप्त करके, संसार देह भोगों की अनित्यता, अशरणता एवं अशुचिता का विचार करके इनसे वैराग्य प्राप्त कर लेना चाहिए। इस देह की उत्पत्ति के कारण भी कैसे है ? इन पर भी कभी विचार किया हैं क्या ?

तू नित पौखे यह सूखे, ज्यों धोवे त्यों मैली।
निशदिन करे उपाय देह का, रोग दशा फैली ।।1 ।।
मात-पिता रज वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
हाड़ मांस, नश, लहू, राध की प्रगट व्याधि घेरी ।।2 ।।
काना पोंडा पडा हाथ यह चूसे तो रोवे।
फले अनन्त जु धर्मध्यान की भूमि विष बोवे ।।3 ।।
केशर चंदन पुष्प सुगंधित वस्तु देख सारी।
देह परसतें होय अपावन निशदिन मल जारी ।।4 ।।

यह इस देह की रचना सामग्री है। जिसे देखना न सुहावे, नाम लेते ही ग्लानी उत्पन्न हो, ऐसे मृतक कलेवर में यह अमृत रूपी भगवान आत्मा मूर्छित हो रहा है। इसमें कुछ भी सार नहीं है। जैसे सड़े गन्ने को चूसने पर कुछ भी नहीं मिलता, बालक उसे चूसता है परन्तु रस न पाने से वह रोने लगता है। उसे समझदार व्यक्ति उठाकर टुकड़े करके भूमि में बो देता है तो अच्छे मीठे रसयुक्त अगणित गन्ने हो जाते हैं। इसी प्रकार सड़े हुए गन्ने के समान यह देह इसे पाकर विवेकीजन रत्नत्रय की प्राप्ति हेतु इच्छाओं का निरोध करके, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके जिनमार्ग पर चलकर सार्थक बना लेते हैं।

यह भव तो अल्प समय के लिये मिला है, आयु का भी कोई भरोसा नहीं कब पूरी हो जावे। इसलिये आत्महितकारी कार्यों में जरा भी बिलम्ब नहीं करना

चाहिए। बालक, जबान और वृद्ध सभी को काल निर्दयता से भक्षण कर जाता है, यह प्रत्यक्ष ही देख रहें हैं। इसलिये वृद्धावस्था में धर्म कर लेंगे इस भरोसे में बैठे रहना योग्य नहीं है। और जिसने जीवन भर तो धर्म के सन्मुख भी नहीं देखा, जो विषय-कषायों की चकाचोंध में ही पागल बना रहा वह क्या बुढ़ापे में धर्म कर सकेगा ? नहीं कर सकता। जीवनभर जिसने जिसकी आराधना की है अंत समय में वैसे ही परिणाम होंगे। सुभोम चक्रवर्ती ने जीवनभर राज्य वैभव एवं विषयभोगों की आराधना की थी तो अंत में वैसे ही भाव हुए और मरकर नरक में गये और भरतचक्रवर्ती ने जीवन भर निजस्वरूप की साधना की थी तो अंतिम अंतर्मुहूर्त में उग्र साधना के बल से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को वरण किया। इसलिये समझदारों को चाहिए कि तप रूपी धनुष को चढ़ाकर रत्नत्रयमयी बाणों द्वारा काल रूपी शत्रु को पहले से ही नष्ट करदें।

पांच इन्द्रियों में एक स्पर्शन इन्द्रिय का जीतना जगत के पामर प्राणियों को बड़ा कठिन लगता हैं, जबकि स्पर्शनेन्द्रिय के भोग ही सर्व अनर्थों के कारण हैं, जिसमें सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास की बाधा बरदाश्त कर लेगा, कठोर पाषाण एवं नरम गद्दों पर जैसे भी मिले सब चला लेगा परन्तु काम-वासना के वशीभूत अरे, रे ! मतवाला बना फिरता है। अत्यन्त दुर्गन्धमय स्थानों के भोग इसे अच्छे लगते हैं, जो कि वर्तमान में अत्यंत दुःखदायक हैं और भावी अनन्त दुःखों के कारण हैं। और अयोग्य रीति से अर्थात् जो परदारा लंपटी होता है वह तो प्रतिक्षण शंकायुक्त, भयवान हुआ फिरता है। यदि उसके गुप्त पाप खुल जावें तो मृत्यु तक का सामना करना पड़ता है, और लोकनिंदा का भागी भी बन जाता है। धन-सम्पदा से विहीन हो कंगाल हो जाता है। जात-पांत का कुछ विवेक ही नहीं रहता। जैसे गाय के सींग दुहने से कभी भी दूध की प्राप्ति नहीं होती वैसे ही विषयों के आधीन होने से सच्चे सुख की प्राप्ति कभी भी नहीं होती। इन विषय भोगों का, वैराग्य रूपी तलवार के द्वारा शीघ्र ही अंत कर देना श्रेयस्कर है।

क्योंकि यह देह तो रोग, शोक आधि, व्याधिरूपी कीड़ों के द्वारा अवश्य ही खाया जायेगा, इसलिये यह शरीर जब तक रोगों का शिकार न बने तब तक शीघ्र ही आत्महित कर लेना उचित है। इस प्रकार पूज्य श्री सुदर्शन मुनिवर ने हितकारी वचनों द्वारा संबोधित किया।

परिषह-विजयी योगीराज पंच परमेष्ठी को ध्याने लगे, कैसे हैं पंच परमेष्ठी ? **अरहंत परमेष्ठी**। जो आत्मगुणों के घातक घातिकर्म हैं, और जो घन अर्थात् गाढ़ हैं ऐसे जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोहनीय कर्म से रहित हैं, तीन लोक को प्रक्षोभ के (आनन्दमयी खलबली के) हेतुभूत सकल विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवलसुख और केवलवीर्य सहित हैं, चौंतीस अतिशययुक्त हैं। प्रख्यात परम औदारिक शरीर है, पुण्य का निवास स्थान जिनका गोत्र है। जो मुनिजन रूपी वन को खिलाने के लिये चैत्र (बसन्त ऋतु) समान हैं, कर्म सेना के जो शत्रु हैं, सर्व को हितरूप जिनका चरित्र है। कामदेव रूपी मदोन्मत हाथी को मारने के लिये सिंह समान हैं, जो सर्व गुणों के समाज (समुदाय) हैं, जो सर्व चिंतित देने वाले कल्पवृक्ष हैं। सर्व विद्याओं के अधिपति हैं। जिनका स्वरूप सुखरूप से परिणमित हुआ है और जो पाप को मार डालने में यम के समान हैं, भव का परिताप जिन्होंने नाश कर दिया है। प्रसिद्ध जिनका मोक्ष है और महिमायुक्त पुनीत जिनके चरण हैं। कामदेव रूपी पर्वत को तोड़ डालने में जो वज्रधर हैं। कांत अर्थात् मनोहर जिनका कायप्रदेश है। सर्व दिशाओं में जिनकी कीर्ति व्याप्त है। जगत के जो अधीश अर्थात् नाथ हैं और निर्वाण दीक्षा का जिन्होंने उच्चारण किया है ऐसे अर्हन्त परमेष्ठी को मैं प्रणाम करता हूँ।

सिद्ध परमेष्ठी - निरवशेषरूप से अन्तर्मुखाकार, ध्यान-ध्येय के विकल्प रहित निश्चय-परमशुक्लध्यान के बल से जिन्होंने आठ कर्म के बंध को नष्ट कर दिया है, क्षायिक सम्यक्त्वादि अष्ट गुणों की पुष्टी से तुष्ट हैं-

सम्यग्दर्शन ज्ञान अगुरुलघु अवगाहना।
सूक्षम वीरजवान निराबाध गुण सिद्ध के॥

विशिष्ट गुणों के आधार हैं। त्रिभुवन शिखरकी शिखा के चैतन्यघनरूप ठोस चूड़ामणी हैं। निश्चय से वे सहज परम चैतन्य चिन्तामणीस्वरूप नित्यशुद्ध निजरूप में ही बास करते हैं। जो अनन्त हैं, अव्याबाध हैं, तीनलोक में प्रधान हैं और मुक्तिसुन्दरी के जो स्वामी हैं, ऐसे सर्व सिद्धों को सिद्धि की प्राप्ति हेतु मैं नमन करता हूँ।

आचार्यपरमेष्ठी - जो ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार रूप पंचाचारों से परिपूर्ण हैं, पंचेन्द्रिय रूपी मदांध हाथी के दर्प का दलन

करने में दक्ष हैं। जो समस्त घोर उपसर्गों पर विजय प्राप्त करते होने से धीर एवं गुण गंभीर हैं। जो अंकिचनता के स्वामी हैं। कषायों को जिन्होंने नष्ट किया है। परिणमित ज्ञान के बल द्वारा जो षटद्रव्य के ज्ञाता हैं। विपुल अचलयोग में अर्थात् विकसित स्थिर समाधि में जिनकी बुद्धि निपुण है और जिनमें गुण उछल रहे हैं ऐसे आचार्य भगवंतों को मैं भवःदुखराशि को भेदने के लिए पूजता हूँ।

उपाध्यायपरमेष्ठी - जो अविचलित, अखण्ड, अद्वैत, परम चिद्रुप के श्रद्धान, ज्ञान और आचरणरूप शुद्ध निश्चय स्वभाव रत्नत्रय वाले होते हैं। जिनेन्द्र के मुखारबिंद से निकले हुए जीवादि समस्त पदार्थ समूह का उपदेश देने में जो शूरवीर हैं। समस्त परिग्रह के परित्याग स्वरूप जो निरंजन निज परमात्म तत्त्व उसकी भावना से उत्पन्न होने वाला परम वीतराग सुखामृत का पान करने से जो निष्कांक्षभाव से युक्त हैं। भव्यकमल के जो सूर्य हैं ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी को मैं नमस्कार करता हूँ।

साधुपरमेष्ठी - परमसंयमी महापुरुष होने से त्रिकाल-निरावरण निरंजन परम पंचमभाव की भावना से परिणमित होने के कारण जो समस्त बाह्य व्यपार से विमुक्त हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र और परम तप नाम की चतुर्विध आराधना में सदा अनुरक्त हैं, बाह्य अभ्यंतर समस्त परिग्रह रहित निग्रन्थ हैं, सम्यक्रत्नत्रय से युक्त होने से निर्मोह हैं। सकल इन्द्रियसमूह के आलम्बन रहित अनाकुल, स्वहित में लीन, शुद्ध, निर्वाण के कारण अर्थात् शुक्लध्यान के कारण शम, दम, यम का निवास स्थांन हैं, मैत्री, दया, दम के मंदिर हैं ऐसे साधु परमेष्ठी को मैं नमस्कार करता हूँ।

पंचमबार उपसर्ग-पंचमगति का हेतु

पंचमगति के कारण-भूत पंचम पारिणामिक भाव को भजकर पंचेन्द्रिय को जीतकर, पंचपरावर्तन का अभाव करके, पंचमबार उपसर्ग पर जय प्राप्त करने वाले श्री १०८ सुदर्शन तपोधन को नमन हो। नमन हो।

बचपन से ही श्मशान घाट में ध्यान करने वाले, सुदर्शनकुमार आज भी पटना नगर के श्मशान में कायोत्सर्ग स्थिर हैं। अविचलित मन, परम जितेन्द्रिय, निर्विकार उपयोग अर्थात् निजस्वरूप में लीन श्री सुदर्शन मुनिवर एकाकी सिद्धों से बातें कर रहे हैं। उसी समय जो धात्रीवाहन राजा की अभयमती नाम की रानी थी जिसने सेठ सुदर्शन को शूली पर चढ़वाया था वह मरकर व्यंतरणी हुई थी, वह विमान में बैठकर आकाशमार्ग से जा रही थी उसका विमान मुनिवर के ऊपर आते

ही स्वत: रुक गया। वह विमान को रुका देखकर आश्चर्य में पड़ गई। तब विमान के रुकने का कारण जानने के लिये वह चारों ओर देखने लगी। अरे !यहाँ तो कोई नहीं जान पड़ता। पुन: पुन: चारों दिशाओं में अपनी दृष्टि ड़ालती है मगर कुछ नजर नहीं आया तब वह अपने विमान के नीचे की ओर देखती है तो उसे सर्व परिग्रह रहित, महान तपस्वी, निर्मोही अम्बर (वस्त्र) रहित एक महात्मा ध्यानमग्न दिखाई दिये, उन्हें देखकर वह व्यंतरणी अत्यन्त कुपित हो उठी। उसने अपने कुअवधिज्ञान से यह जान लिया कि यह वही सुदर्शन है जिससे मेरी कामवासना की पूर्ति न होने से मुझे मरना पड़ा था इस कारण सुदर्शन मुनिराज से बदले की भावनावश आक्रान्त होकर अपने विमान से नीचे उतरी और भयंकर आकृति बनाकर मुनिवर के सामने आकर बोली- हे सुदर्शन ! यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि पूर्वभव में मैं एक राजा की रानी थी और उस समय मैंने एकदम आशावती हो तेरे साथ काम तृप्ति की इच्छा की थी। मगर तूंने अपने धैर्य के गर्व में आकर मुझे ठुकरा दिया था। उसी दु:ख के कारण मरकर मैं इस भव में व्यंतरणी हुई हूँ। मैंने पहले भी तेरे ऊपर उपसर्ग किया था, पर उस समय किसी रक्षक देव ने आकर तेरी रक्षा की थी। अब बोल। इस समय मैं तुझ पर उपसर्ग करूँगी अब तुझे कौन बचायेगा ?

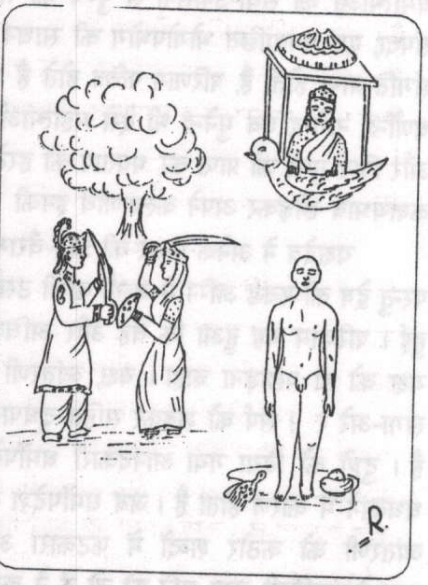

इस प्रकार कठोर वचन कहकर दुराचारणि ने श्री सुदर्शन मुनि पर उपसर्ग करना प्रारंभ कर दिया। व्यंतर स्वभाव से कौतूहलीवृत्ति वाले और विक्रियाऋद्धि में कुशल तो होते ही हैं। उसने अपनी विक्रिया से अनेक प्रकार के भयानक रूप बनाकर ड़राना प्रारंभ कर दिया, अनेक प्रकार के कुवचन कहने लगी और मुनि के शरीर को नखों से लोचना एवं दांतों से विदारण करना, मारना, उठाकर पटकना इत्यादि शारीरिक कष्ट दिये। उस समय मुनीश्वर की आत्मसाधना के प्रभाव से देवों के आसन कंपायमान हो उठे। जिस देव ने पहले सुदर्शनजी का उपसर्ग निवारण किया था, वही पुन: अपने आसन

को कांपता हुआ देखकर वह अपने अवधिज्ञान से जान लेता है कि पूज्य सुदर्शन मुनिवर पर पुनः भयंकर उपसर्ग हो रहा है, वह शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचा। मुनिवर को नमस्कार कर तीन प्रदक्षिणा देने के बाद उस व्यन्तरणी को संबोधित करता हुआ बोला-

हे देवी ! तुम्हें इन महात्मा को कष्ट देना योग्य नहीं है। मुनीश्वर पर उपसर्ग करना महानिंद्य कार्य है। इनकी विराधना से तुम नरक के अगणित दुःखों को पाओगी। जो दुराचारीजन इन महात्माओं की निन्दा करते हैं वे नरकादि कुगतियों में जाकर भव-भव में वचनातीत दुःखों को भोगते हैं। वे अधें, बहरे, लूले, गूंगे होते हैं, कुरूपवान, दुर्गन्धवाले, रोग, शोक से सदा आकुल व्याकुल रहते हैं। वे दरिद्री, दीन, हीन होते हैं, जगह-जगह अपमानित किये जाते हैं, भूख-प्यास की तीव्र वेदना से बारंबार प्राण गंवाते हैं। अपने से बलवान प्राणियों के द्वारा चीरे-फाड़े एवं खाये जाते हैं। अर्थात् सर्व दुःख संकटों के भागी होते हैं। इसलिये तूं पूर्व के बैर भावों को तजकर इनकी भक्ति कर, इनसे अपने कल्याण के लिये उत्तम वर मांग। धर्मात्माओं की सेवा-उपासना से पुण्य का संचय होता है, उससे धन वैभव, रूप संपदा, एवं मनवांछित भोगोपभोग की साधन सामग्री प्राप्त होती है। सज्जनों की संगति प्राप्त होती है, परिणाम पवित्र होते हैं और सद्गति की प्राप्ति होती है। इन्द्र, धर्णोन्द्र, नागेन्द्र एवं मुनेन्द्र भी ऐसे महात्माओं के चरणकमलों की पूजा करते हैं। और जिन गुणों को प्राप्त कर भवताप को हरते हैं इसलिये तेरा कर्त्तव्य है कि इनसे कषायभाव छोड़कर अपने कल्याणार्थ इनकी भक्ति कर।

यक्षदेव ने अनेक प्रकार की ज्ञान-वैराग्य दायनी शिक्षा उस व्यंतरणी को दी, परन्तु द्वेष की प्रचंड अग्नि में जलने वाली उस व्यंतरणी को वह शिक्षा अवगुणकारी हुई। परिणाम यह हुआ कि वह और अधिक कुपित होकर फुंकारने लगी, उसने यक्ष को ही पछाड़ना चाहा। यक्ष, व्यंतरणी की विकराल हालत देखकर सोचने लगा-अरे रे ! सर्प को शक्कर सहित दूधपान कराने पर भी वह जहर ही उगलता है। दुष्टों को दिया गया आनंदकारी धर्मोपदेश भी उसके क्रोधानल को अधिक धधकाने में कारण होता है। जब धर्मोपदेश का उसने दुरोपयोग किया तब यक्ष ने व्यंतरणी को कठोर शब्दों में फटकारा और मुनि का उपसर्ग दूर करने को कहा-हेदुष्कर्मिणी, दुष्टा, मुनि को जो तूं ने कष्ट देने का विचार किया है यह विचार तुझे नरक-निगोद में ले जाकर असहनीय अनंत दुःखों को देगा, जिन्हें कोई जीभ

से कहने में भी समर्थ नहीं, यदि इस बार भी तूं ने अपनी हठ नहीं छोड़ी तो फिर मुझे भी इसके प्रतिकार के लिए विवश होना पड़ेगा। अब भी अपने कल्याणार्थ मेरी बात मान ले। इसमें तेरा ही हित है।

परन्तु उस व्यंतरणी पर तो क्रोध का भूत चढ़ा हुआ था, वह यक्ष की बात मानती भी कैसे ? वह तो यक्ष से लड़ने के लिये उद्यत हो गई। दोनों ही विक्रिया में सिद्धहस्त थे तब उनकी शक्ति का क्या कहना ? दोनों ही ने अपने-अपने दैव-बल से नाना प्रकार की कुशलता पूर्वक घोर युद्ध किया। एक सप्ताह तक दोनों के बीच भंयकर युद्ध होता रहा। अन्त में व्यंतरणी परेशान हो गई इसलिये परास्त होकर वहाँ से भाग गई। यक्ष विजयी हुआ।

कैवल्य भानु

यहाँ यक्ष और व्यन्तरणी में युद्ध ठना था और मुनीश्वर के अन्दर शांति और कर्मों के बीच युद्ध छिड़ा था, फल यह निकला कि वहाँ व्यंतरणी हार मानकर भाग गई और यहाँ शुक्लध्यान के प्रचंड पौरुष से मुनिराज ने क्षपकश्रेणी आरंभ कर दी जिससे कर्म शत्रु भी परास्त हो भागने लगे। प्रथम ध्यान रूपी बाण से मोह राजा की ध्वजा तोड़ ड़ाली। इस तरह मोह रूपी शत्रु पर विजय प्राप्त करके मुनीश्वर ने अपनी आत्मा को शील रूपी कवच पहना लिया, फिर गुणरूपी सैनिकों के साथ ये चारित्ररूपी युद्धक्षेत्र में पहुँचे। यहाँ ये उपशम अर्थात् समता रूपी हाथी पर आरूढ़ हो ध्यान रूपी तलवार को हाथ में धारण किये कर्मरिपुओं को जीतने के लिये एक रणधीर सेनापति की तरह शोभायमान होने लगे। यहाँ इन्होंने बहुत शीघ्रता से अपने परिणामों को उन्नति के शिखर पर पहुँचा कर ऐसी छलांग मारी कि क्षण मात्र में ही अत्यंत कठिन एवं केवलज्ञान के हेतु क्षीणकषाय नामक गुणस्थान को प्राप्त कर लिया।

पुनः स्वरूप में उग्रलीनता रूप दूसरे एकत्ववितर्क-अवीचार नामक शुक्लध्यान के बल से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्म की फौज को भी मार भगाया। जैसे राजा अपने शत्रु का नाशकर विजय प्राप्त करता है वैसे ही द्वितीय शुक्ल ध्यान रूपी राजा ने त्रैसठ कर्म प्रकृतियों का नाश करके अर्थात् श्री सुदर्शन मुनिराज ने कर्मों पर विजय प्राप्त करके कैवल्य का राज्य प्राप्त कर लिया अर्थात् अनंतानंत द्रव्य, गुण, पर्यायों को एक समय में युगपत प्रत्यक्ष जानने वाला केवलज्ञान, सभी पदार्थों को सामान्य रूप से अवलोकन करने वाला केवलदर्शन,

आत्मिक अतीन्द्रिय आनंद रूप अनन्त सुख, पूर्ण स्वरूप की रचना रूप अनन्तवीर्य, निजस्वरूप का पूर्ण दान अपनी ही परिणती को स्वयं दिया, अतीन्द्रिय सुख का लाभ स्वयं ने ही लिया। अपने पूर्ण स्वरूप का भोग, पूर्ण स्वरूप का बारंबार रसास्वादन रूप उपभोग, अनन्त स्वरूप की अप्रतिहतभाव रूप प्रतीतिमय क्षायिक सम्यक्त्व-इस प्रकार नौ केवललब्धियों के स्वामी हो गये।

श्री १०८ सुदर्शन मुनिराजजी को केवलज्ञान सूर्य उदित हुआ तो उसका प्रताप स्वर्ग लोक में भी फैल गया, देवों के भवनों में घटनाद, पुष्टवृष्टि, नाना प्रकार के बाजे बजने लगे और भी आश्चर्यकारी प्रसंग भजने लगे इन्हें देख देवों ने अपने अवधिज्ञान से जान लिया की मध्यलोक में श्री सुदर्शन मुनिवर को कैवल्य भानु उदित हुआ है, अत: उन सभी ने सात पेंड़ आगे चलकर प्रभु को परोक्ष नमस्कार किया। वे सभी देव पंचम अंत:कृत केवली की जय जयकार करते हुए केवलज्ञान कल्याण की पूजा के लिये तैयार हो गये। सौधर्म इन्द्र ने कुबेर को भगवान की गंधकुटी निर्माण करने का आदेश दिया।

इन्द्रराज के आदेशानुसार कुबेर ने शीघ्र ही आकर केवलीप्रभु की स्वर्णमयी दिव्य गंधकुटी की रचना की। ध्वजा, सिंहासन, छत्र, चंवर आदि से अलंकृत किया। मंगलमयी भगवान की दिव्यध्वनि से लाभान्वित हो संसारी प्राणी भवताप नाश करें इस ध्येय से सभी रचनायें कीं।

तदनन्तर सभी देव अपने-अपने विमानों पर आरूढ़ होकर बड़ी विभूति के साथ जय-जय की ध्वनि से और गीत, वाद्य के मनमोहक शब्दों से आकाश को गुंजाते हुए भगवान श्री सुदर्शन प्रभो की केवलज्ञान पूजा के लिये पटनानगर के उद्यान में आ पहुँचे। सभी देवों की देवांगनायें भी धार्मिक प्रेम से प्रमुदितचित्त एवं प्रसन्नमुख मंडल और आनन्द के साथ प्रभु की पूजन हेतु साथ ही आईं। प्रथम ही

गंधकुटी में विराजमान भगवान को नतमस्तक हो तीन प्रदक्षिणा दी, फिर भगवान को नमस्कार किया तत्पश्चात् अतिशय भक्ति के साथ स्वर्ण रत्नमयी झारी में निर्मल जल, मलयागिरी चन्दन, मोतियों के अक्षत, कल्पतरू के पुष्प, अमृतनिर्मित नैवैद्य, मणिमय दीप, दंशाग धूप, और सुन्दर सुगंधित सुस्वादु मनोहर फल वगैरह दैवीद्रव्यों से १००८ श्री देवाधिदेव पंचम अन्तःकृत केवली भगवान की अति ही भक्तिभाव से पूजा की। पुष्पवृष्टि की, नृत्यगान किया, नानाप्रकार के बाजे बजाये और अति ही आनन्दपूर्वक उत्सव मनाया, जिसे देखकर भक्तजन आश्चर्यचकित रह गये। देवों के सभी कार्य अनुपम थे। पूजन के बाद सभी देवतागण आनन्दविभोर हो प्रभु की स्तुति कर रहे हैं-

प्रभुस्तुति

निरखत जिनचन्द्र-वदन, स्वपद सुरुचि आई ।।टेक ।।
प्रगटी निज बान की, पिछान ज्ञान भान की।
कला उदोत होत काम जामिनी पलाई ।।1 ।।
सास्वत आनन्द स्वाद, पायो बिनस्यों विषाद।
आन में अनिष्ट – इष्ट, कल्पना नसाई ।।2 ।।
साधी निज साध की, समाधि मोह व्याधि की।
उपाधि को विराधि के, आराधना सुहाई ।।3 ।।
धन दिन छिन आज सुगुन चिन्तै जिनराज अबै।
सुधरो सब काज सेवक अचल रिद्धि पाई ।।4 ।।
निरखत जिनचन्द्र वदन स्वपद सुरुचि आई।

जगत को आश्चर्यचकित कर देने वाले धैर्य के सागर प्रभो आप धन्य हो। महा क्लेशों के समूह को चूर-चूर कर देने वाले सुदर्शनमेरु, आप जयवंत वर्तो। हे शील-शिरोमणि भगवान शैलेषीनाथ आप की जय हो। हे स्वामिन्! आप ही पूज्यनीयों में पूजनीय, गुरूओं में गुरु, ज्ञानियों में ज्ञानी, देवों के देव, योगियों में योगी, तपस्वीयों में तपस्वी, गुणवानों में गुणवान, तेजस्वीयों में तेजवान और दिव्यरूप धारण करने वाले हो। आप ही जगत के ईश होने से जगदीश हो। मोक्षाभिलाषी के सच्चे हितेषी हो। जैसे सूर्य कमलों को विकसित करने वाला है वैसे ही हे प्रभो!

आप भव्य कमल विकासी हो। हे पूर्णानंदविभो ! आप जगत को आनन्ददायक हो। आप त्रिजगत के पूज्य हो। संसार से पार करने वाले आत्मिक बंधु हो। हे प्रभो ! आप लौकिक एवं लोकोत्तर सुख के दाता हो। हे भगवन् आप समान उपसर्गों पर धैर्यपूर्वक जयकरणशील इस जगत में कोई नहीं है। हे ईश ! इतना ही नहीं आप तो अनन्तान्त गुणों के सागर हो, जिनका पूर्ण वर्णन करने में श्री भगवान भी समर्थ नहीं हैं। तब फिर हम जैसे साधारण ज्ञान वालों की भला क्या ताकत ? हे कृपानिधि ! यही जानकर हम आपके गुणानुवाद स्वशक्ति अनुसार करके अपने को संतोषित करते हैं। अनन्तचारित्र एवं अनन्तसुख से समृद्ध, दिव्यरूपधारी परमेश आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं। आप ही मुक्तिपति हो। अतएव भक्ति के साथ हम आपके पादपकंजों को प्रणाम करते हैं।

हे गुणनिधि ! हम आपकी स्तुति गुणानुवाद से जगत का धन-वैभव, रूप-सम्पदा, पूजा-प्रतिष्ठा आदि कुछ भी नहीं चाहते। हमारी तो मात्र यही अभिलाषा है कि निर्विघ्नतापूर्वक मोक्षमार्ग में अग्रसर होकर पूर्णता को प्राप्त करें, ऐसी शक्ति हमें भी दीजिए यही विनम्र प्रार्थना है। इस प्रकार देवतागण भगवान की वंदना करके धर्मलाभ की भावना से भगवान के चारों ओर बैठ गये।

पटनानगर से शाश्वतपुरी

अब प्रभु शुक्लध्यान का तीसरा पाया "सूक्ष्मक्रियाप्रतिपती" नाम के ध्यान को प्राप्त हो गये हैं। इस ध्यान के बल से योगों की भी कृष्टियाँ होने लगीं अर्थात् स्थूलयोग कृष होकर सूक्ष्मयोग होते ही अन्तर्मुहूर्त की अल्प अवधि में ही योग-निरोध हो गया। प्रभु ने यहाँ अठारह हजार शील के गुणों को पा लिया तथा चौरासीलाख उत्तरगुणों के भी आप स्वामी हो गये, अब प्रभु सुदर्शननाथ से शैलेषीनाथ बन गये। क्षुधा, तृषा, जरा, आतंक (व्याधि), जन्म, मृत्यु, भय, स्मय (8 मद), राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, रति, निद्रा, विस्मय (आश्चर्य), विषाद, स्वेद (पसीना), खेद इन अठारह दोषों से रहित निर्दोषी परमात्मा बन गये।

काय (शरीर) का संयोग होने पर भी प्रभु अयोगी बन गये। प्रकृति, प्रदेशबंध का हेतु मन, वचन, काय इन तीन योगों का कंपन रुक गया होने से अयोगीनाथ हो गये। जगतस्वामी अनेक भव्यों को अमूल्य रत्नत्रय से अलंकृत करके अब अतिशीघ्र

शिवरमा को वरने के लिये चौदहवें गुणस्थान में आ चुके हैं, वहाँ चतुर्थ शुक्लध्यान अर्थात् व्युपरत-क्रियानिवृत्ति नाम के ध्यान को ध्या रहें हैं। इस ध्यान के प्रखर प्रताप से प्रथम बार में ही बहत्तर योद्धाओं को सत्वविहीन कर दिया अर्थात् ७२ कर्मप्रकृति नष्ट हो गईं और अन्तिम समय में बारह प्रकृतियों एवं शरीर का क्षय करके प्रभु उर्ध्वगमन स्वभाव से एक ही समय में परम आनन्द, अनन्त अव्याबाध सुख, परम अवगाढ़ सम्यक्त्व इत्यादि अनन्त गुणों के स्वामी हो सिद्धालय में राजने लगे, अब प्रभो सादि अनंत काल तक अपनी शाश्वतपुरी में रहते हुए अनन्त सुख का भोग करेंगे। तभी देवतागण प्रभु का निर्वाण कल्याणक मनाने के लिये हर्षित मन और पुलकित वदन हो प्रभु के गुणों का जय जयकार करने लगे अर्थात् जय जय के नाद से सारे आकाश को गुंजा ड़ाला। अशरीरीनाथ की जय हो। शील शिरोमणी की जय हो। निर्वाणनाथ की जय हो। जगतस्वामी की जय हो। पंचम अंतःकृत केवली की जय हो। उपसर्ग विजेता की जय हो। देवतागण श्री परमपूज्य सुदर्शन सिद्ध परमात्मा की स्तुति कर रहे हैं।

सिद्ध स्तुति

गुण अनंतानंतधारी नमों सिद्ध निरंजनम्।
अष्टकर्म विनाशकर्ता जगतपति अघभंजनम्॥
मोह रागादिक विकारी भाव जय कर्ता स्वयम्।
प्रगट उर में पारिणामिक भाव ही उत्तम परम्॥
निजानंद स्वरूप चिन्मय चिदानंद स्वरूपकम्।

जिणाणं जिदभवाणं परमात्मतत्व प्रकाशकम्॥
निर्विकार विकारवर्जित पूर्ण सुखकर अनुभवम्।
स्वयं ज्योति स्वरूप निर्मल स्वयं रत्नत्रय शिवम्॥
सर्वघाति अघाति नाशक सकल भवभय दुखहरम्।
ऋषिमुनीश्वर साधु वंदित सत्य शिवमय सुन्दरम्॥
त्रिलोकाग्र हुए विराजित नष्टकर भव अंजनम्।
सर्वदा मंगल स्वरूपी भव्यजन मन रंजनम्॥

श्री सुदर्शन श्रेष्ठी के साथ दीक्षित हुए धात्रीवाहन आदि राजागण वगैरह में से कितने ही मुनिराजों ने निज ज्ञानानंदमयी भगवान आत्मा में उग्रलीनता रूप तप के द्वारा पूर्णानंदमयी एवं द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म से रहित ऐसी मुक्ति को प्राप्त किया। कितने ही मुनिराजों ने अपने अपने परिणाम एवं तपश्चरण के फलस्वरूप सौधर्मस्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक को प्राप्त किया और मनोरमा आदि महिलायें जिनने आर्यिका दीक्षा धारण की थी उनमें से कितनी ही आर्यिकाओं ने अपने अपने तप के द्वारा इस निंदनीय स्त्री पर्याय का छेद किया और सौधर्म स्वर्ग में देव हुए, कितनी ही अच्युत स्वर्ग में देवी हुईं।

इससे यह ज्ञात होता है कि केवली भगवान आदि महापुरुषों का सत्समागम जगत के प्राणियों को क्षण मात्र में मुक्ति दायक होता है। भगवान का नाम स्मरण भी कितना महान है कि—

जब चिंतो तब सहसफल लक्खा फल गम्भेर।
कोड़ाकोड़ अनन्त फल जब जिनवर दरशे॥

इस प्रकार "णमो अरहंताणं" पद का सतत पाठ एवं ध्यान करके सुभग नामक ग्वाले ने दूसरे ही भव में सुदर्शन के रूप में जन्म लेकर नगर श्रेष्ठी पद को प्राप्त किया एवं अपने सद्विचारों तथा न्याय-नीति के बल से राज्य-बल्लभ हुए, यही कारण है कि आप सम्पूर्ण नगर बासियों के आदर एवं स्नेह के अविभागी पात्र हुए। स्वभाव से ही शीलव्रतों में सुमेरू समान तथा श्रावकोचित व्रतोंमयी आपका जीवन जगत के दुखी प्राणियों के लिये धर्ममार्ग का प्रेरणा स्त्रोत बन गया और निजस्वरूप की ग्राहक धर्मबुद्धि से मोक्षमार्गी बनकर आप मुक्ति वधु के हृदयहार

बन गये, जिससे जगत के विवेकीजन आपकी स्तुति कर रहे हैं। आपके अपरंपार गुणों का भविकजन कीर्तन कर रहें हैं। हे कल्याणनाथ। मैं भी निज कल्याणार्थ आपको नमस्कार करता हूँ एवं स्तुति करता हूँ।

है परम दिगबंर मुद्रा जिनकी वन वन करें बसेरा।
मैं उन चरणों का चेरा, हो वन्दन अगणित मेरा॥
शाश्वत सुखमय चैतन्य सदन में, रहता जिनका डेरा।
मैं उन चरणों का चेरा, हो वन्दन अगणित मेरा॥
जहाँ क्षमा मार्दव आर्जव सत, शुचिता की सौरभ महके।
संयम तप त्याग आंकिचन स्वर परिणति में प्रतिपल चहके॥
है ब्रह्मचर्य की गरीमा से, आराध्य बने वो मेरा॥१॥
नर - सुरकृत उपसर्गों में, अचल सदा जो रहते।
जो मन-वच-तन का अवलंबन तज चैतन्य विहारी रहते॥
चैतन्य राज की सुख शैय्या में रहता जिनका डेरा॥२॥
निज ज्ञायक का अविचल अवलंबन ले कामदेव को दहते।
धीर वीर अरु परमपराक्रम से कैवल्य प्रकट जो करते॥
चैतन्यराज की अद्भुत निधियाँ जिनमें करे बसेरा॥३॥
शाश्वत ध्रुव निज श्रृंगराज पर चढ़ कर्म अरी को चूरे।
नोकर्म रहित निज ज्ञायक में रम पंचगात्र कर दूरे॥
शुद्ध अतीन्द्रिय शिवरमणी का लेते स्वाद घनेरा॥४॥

इस प्रकार भक्ति पूर्वक जिनेन्द्रदेव की स्तुति की, जिन्होंने वरांगनाओं पर जीत की मुहर लगाकर अपने स्थिर चारित्र को प्रत्यक्ष किया, जो कर्मों को निसत्व करके निर्वाणनाथ बन गये। जो शाश्वतपुरी के शाश्वतसुख के भोक्ता हो गये। जो चैतन्यमयी अनंत गुणों से सम्पन्न हो प्रभो बन गये ऐसे श्री सुदर्शन स्वामी सिद्ध प्रभु सिद्धात्मविभो को प्रणमन एवं वंदन करके मैं प्रार्थना करता हूँ कि हे सिद्धिनाथ मुझे भी सिद्धि का वर प्रदान कीजिए।

समस्त संसार के द्वारा स्तुति योग्य हे स्तुत्य! भक्ति मुक्ति दायक अरहंत परमेश्वर, तीर्थंकर परम देव को, सर्वार्थसिद्धि के दायक अनन्त सिद्धगुणों से अलंकृत अनन्तानन्त सिद्ध भगवंतों को, पंचाचार में परायण आचार्य परमेष्ठी को, जिनेन्द्र

भगवान द्वारा कथित अर्थों को प्रकाशित करने वाले ज्ञानवारिधि उपाध्याय परमेष्ठी को, सम्यक् रत्नत्रयवंत तथा चतुर्विध आराधनाओं में रत साधु परमेष्ठी को नमस्कार करके मैंने यह मंगलमयी श्री सुदर्शनस्वामी चरित्र को निज-पर के हितार्थ रचा है, इसका पठन-पाठन, श्रवण-मनन करके सभी प्राणी अपनी सिद्धि को सिद्ध करें यही मंगल भावना है। जय जिनेन्द्र।

ॐ शांति: ॐ शांति: ॐ शांति